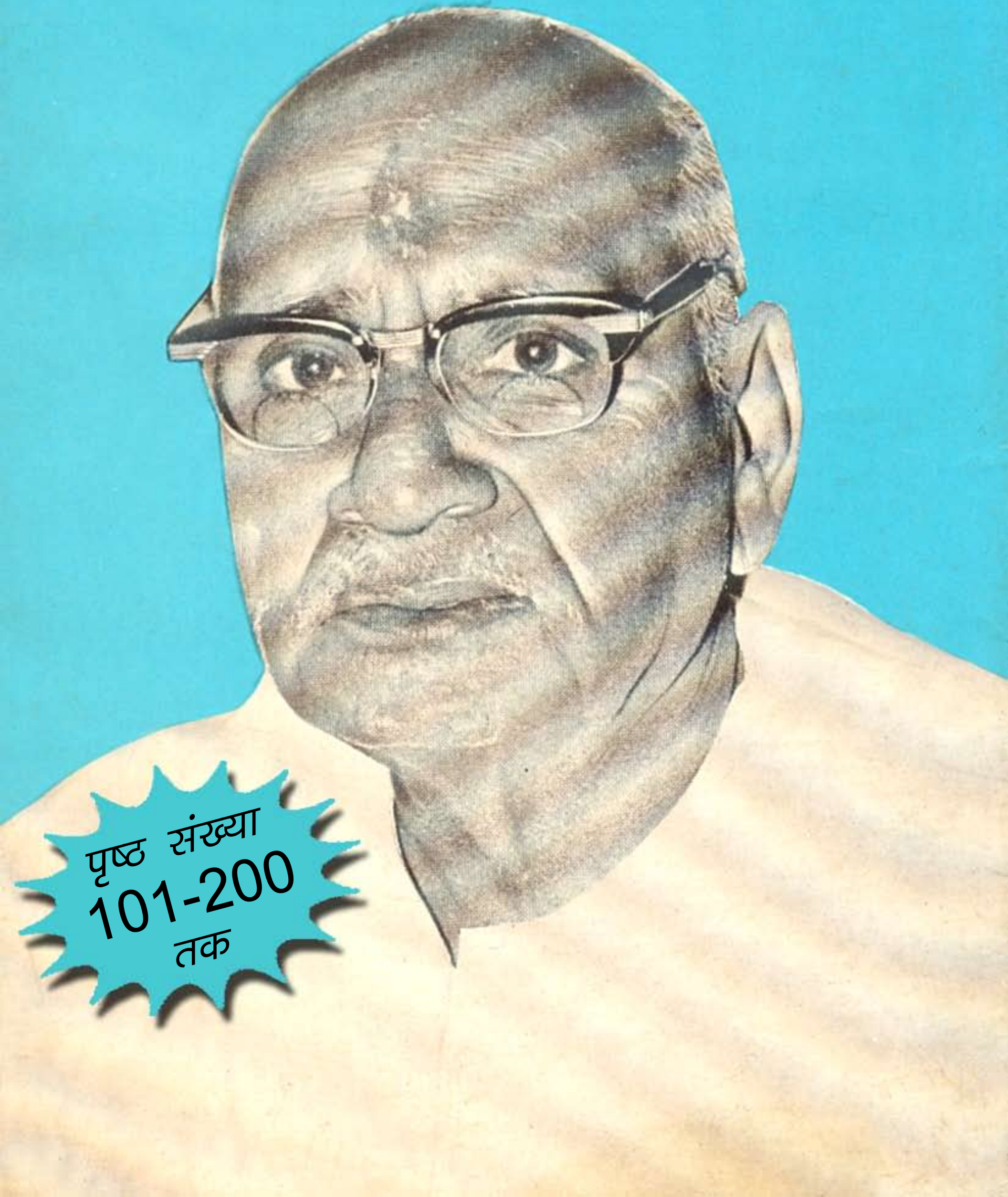
संत हृदय श्रीपोद्दारजी



पृष्ठ संख्या 101-200 तक

सबेरे तक यदि प्रूफ-रीडिंग नहीं हो पायी तो कार्यकी बड़ी हानि होगी।

मैं कहकर चला तो आया, पर मुझको चैन नहीं था। कार्यकी सम्पन्नताकी चिन्ता मनपर सवार थी। मैं अच्छी तरह जानता था और समझ रहा था कि जितना कम्पोज्ड मैटर मैं श्रीभाईजीके पास छोड़कर आया हूँ, उस मैटरको यदि पाँच-छः प्रूफ-रीडर रात भर लगातार प्रूफ-रीडिंग करें तो भी नहीं कर पायेंगे। एक ओर इतना अधिक मैटर प्रूफ-रीडिंगके लिये था और दूसरी ओर श्रीभाईजीके जप-संध्या-आदिके कार्यके अलावा खान-पान-शयनमें भी कुछ समय अवश्य जायेगा। इन दोनों बातोंकी कल्पना करके बार-बार मेरा चिन्तन थक जाता था और मैं बड़ी चिन्ता कर रहा था कि कैसे उस सारे मैटरकी प्रूफ-रीडिंग हो पायेगी। मैं कितनी ही चिन्ता करूँ, पर कोई उपाय भी तो मेरे सामने नहीं था। उन्होंने सबेरेके समय मुझे बुलाया था और उनकी आज्ञानुसार मैं सबेरे उनके पास गया। उन्होंने वह सारा मैटर मुझे वापस दे दिया। मैंने देखा कि आरम्भसे अन्ततक प्रत्येक पन्नेकी प्रूफ-रीडिंग हुई है। प्रूफ-रीडिंगमें एक-एक शब्द, एक-एक विराम-अर्धविराम-चिह्न आदिपर पूरा ध्यान दिया गया है। मैं तब भी नहीं सोच पाया था और इस क्षणतक नहीं सोच पाया हूँ कि श्रीभाईजीने इतने सारे मैटरकी प्रूफ-रीडिंग कैसे और कब कर दी ? उस बातको सोच-सोच करके मैं बार-बार आश्चर्यमें डूब जाता हूँ।

श्रीबजरंगलालजी यह बात बता रहे थे पूज्य श्रीसेठजीको और हम सभी बैठे हुए लोग विस्मय पूर्वक सुन करके इस विवरणको। सभीके चेहरोंपर आश्चर्य छाया हुआ था, गहरा आश्चर्य, ऐसा गहन आश्चर्यकी स्वयं पूज्य सेठजी बहुत देरतक कुछ बोल नहीं पाये।

आज भी मुझे जब-जब वह संध्या याद आती है, वह वर्णन याद आता है, उपस्थित लोगोंकी आँखें याद आती हैं और श्रीसेठजीका मौन याद आता है तो मैं खो जाता हूँ पूज्य श्रीभाईजीकी लोकोत्तर कार्य-क्षमताकी अनुमानातीत अगाधतामें। ■

एक माताजी

मेरा हठ : उनका वात्सल्य

अब तो शरीर वृद्ध होनेको आया, अतः कह देनेमें संकोच नहीं है। मेरे पिताजीने छोटी आयुमें ही मेरा विवाह कर दिया था और विवाहके कुछ समय बाद ही वैधव्यका दुःख मेरे सिरपर आ पड़ा। अब इस दुःखको भोगना ही था। संतोंके आश्रयने मनको बल दिया। जीवनके दिन बीतने लगे। एक सालके बाद दूसरा साल, इस प्रकार बहुत सारे साल निकल गये। कई साल बाद उनकी, जो गुजर गये थे, उनकी बहुत ज्यादा याद आने लगी। क्या दिन और क्या रात, उनकी याद थमती ही नहीं थी। मुझे चिन्ता होने लगी कि क्या करूँ ? बेटीको सहारा अपने माँ-बापका ही होता है। घरपर वे मेरे जन्म देने वाले पिता हैं तो गीतावाटिकामें श्रीभाईजी मेरे धर्म-पिता हैं। मैं श्रीभाईजीके पास उनके कमरेमें गयी। वे कुछ लिख रहे थे। मुझको देखकर श्रीभाईजीने पूछा— क्यों ? कैसे आयी ?

मैंने कहा— कई दिनसे उनकी बड़ी याद आ रही है। उनकी आत्मा किसी तरहका कष्ट पा रही है क्या ?

मुझे पता था कि श्रीभाईजीकी अन्य लोकोंमें भी पहुँच है, पर मुझे भुलावेमें डालनेके लिये उन्होंने कहा— मैं भला क्या जानूँ कि तुम्हारे दिवंगत पतिकी आत्मा कष्टमें है या सुखमें ?

मुझे बात बनानी तो आती नहीं थी। मैंने सीधे-सीधे कहा— मैं यह सब नहीं जानती। आप चाहें तो पता लगा सकते हैं। आप पता लगाइये और बताइये। उनकी याद इन दिनों मुझे बहुत ही आती है।

श्रीभाईजीने कहा— तू तो मूरख है। मुझे जानकारी थोड़े ही है कि किसकी आत्मा किस लोकमें है और किस हालतमें है।

मैं तो हठ करके वहीं बैठ गयी। अपने पितासे हठ नहीं करूँगी तो किससे करूँगी। मैंने आग्रह पूर्वक कहा— मैं भरममें पड़ने वाली नहीं हूँ। आप बता सकते हैं। जब तक आप कुछ बतायेंगे नहीं, मैं जाऊँगी नहीं। न मैं जाऊँगी और न आपको काम करने दूँगी।

मुझे ऐसा लगा कि मेरा वह हठ श्रीभाईजीको प्यारा लगा। हठ भी किसी अपनेके सामने ही करना बनता है। मेरी हठभरी बात सुनकर श्रीभाईजी मुस्कुराने लगे। उनकी मुस्कुराहट देखकर ही तो यह बात मेरे मनमें आयी कि उनको मेरा हठ अच्छा लगा। मुस्कुराते हुए श्रीभाईजीने कहा— अच्छा जा। परसो मेरे पास आना।

यही तो मैं सुनना चाहती थी। दो दिन बाद मैं फिर श्रीभाईजीके पास गयी। श्रीभाईजीने कहा— मैंने पता लगा लिया है। वे कष्टमें नहीं है, पर उनके अधिक मंगलके लिये तू किसी ब्राह्मणसे श्रीविष्णुसहस्रनामके कुछ पाठ करवा दे।

श्रीभाईजीके मुखसे इस बातको सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ और इसके बाद उस यादका वेग भी शान्त हो गया। ■

श्रीमिश्रीलालजी तिवारी

[१] उज्जैनकी संघ शाखापर

सन् १९५६ के जनवरी मासमें पूज्य श्रीभाईजी अपने स्नेही बन्धुओंके साथ तीन धामकी तीर्थ-यात्राके लिये निकले थे। यह तार्थ-यात्रा की गयी थी ट्रेनके द्वारा। विभिन्न तीर्थ स्थानोंका दर्शन करते हुए जब यात्री-ट्रेन उज्जैन पहुँची, उस समयकी बात है। मैं प्रातःकाल पूज्य श्रीभाईजीसे मिला और अपना परिचय देते हुए मैंने उनसे निवेदन किया— मैं उज्जैन जिलेमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघका प्रचारक हूँ। इस वर्ष परमपूज्य श्रीगुरुजी (संघके सरसंघचालक पूज्य श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकरजी) की इक्यानवीं वर्षगाँठ है। इस अवसरपर हम स्वयंसेवक लोग उन्हें श्रद्धानिधि भेंट करना चाहते हैं। यह समर्पित श्रद्धानिधि भी संघ-कार्यके ही उपयोगमें आयेगी। पासमें ही हमारी संघ शाखापर यह समर्पण-कार्यक्रम है। क्या आप कुछ समय निकालकर संघ-शाखापर चलनेकी कृपा करेंगे ?

मैं श्रीभाईजीसे निवेदन अवश्य कर रहा था, पर स्वीकृतिकी सम्भावना कम ही दिखलायी दे रही थी। जितने व्यक्तियोंसे वे घिरे हुए थे और जैसी-जैसी बातें उनके सामने आ रही थी, उसको

देखते हुए निराशाके भावोंका उदित होना स्वाभाविक था। पर मैं व्यर्थ ही हताश हो रहा था। उन्होंने तुरंत चलनेकी स्वीकृति दे दी। यह स्वीकृति झलक प्रस्तुत कर रही थी श्रीभाईजीके हिन्दू हृदयकी, जिसमें पूज्य श्रीगुरुजीके लिये अगाध निजत्व था और जिसमें संघ-कार्यके लिये अपार आस्था थी। तीर्थ-यात्राकी व्यस्तताके बाद भी श्रीभाईजी मेरे साथ चल पड़े।

हमारी शाखा शहरमें एक छोटी-सी पहाड़ीके ऊपर थी और वहाँ पहुँचनेके लिये लगभग साठ सीढ़ी चढ़नी पड़ती थी। मुझे यदि यह पता होता कि श्रीभाईजीका स्वास्थ्य शिथिल है तो शायद मैं ही उन्हें चलनेसे मना कर देता, पर कार्योत्साहमें मेरी दृष्टि उस ओर गयी ही नहीं और मेरा यह प्रमाद मुझे जब-जब याद आता है, तब-तब बड़ा चुभता रहता है। संघ-शाखापर पहुँचकर श्रीभाईजीका संक्षिप्त भाषण हुआ। अपने भाषणमें श्रीभाईजीने हिन्दू देश, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू आदर्शोंकी महिमापर प्रकाश डालते हुए पूज्य श्रीगुरुजीके नेतृत्व-कौशलका गुणगान किया, जिनके निर्देशनमें संघ-कार्यका दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक विस्तार हो रहा है। श्रीभाईजीने संघ-कार्यको हिन्दुत्वका समर्थ पहरेदार बतलाया और कहा कि ऐसे कार्यके लिये तन-मन-धनसे जितना सहयोग दिया जाय, उतना ही अपने धर्मकी सार्थक और सफल सेवा है।

शाखापर स्वयंसेवकोंको तथा अन्य उपस्थित नागरिकोंको प्रबोध प्रदान करके श्रीभाईजी वापस लौट आये। व्यस्तता और स्वास्थ्यकी बातको नजरन्दाज करके जिस प्रसन्नताके साथ श्रीभाईजी हमारे कार्यक्रममें पधारे और जिस रीतिसे ओजस्वी भाषामें विभिन्न प्रसंगोंके उदाहरण द्वारा हिन्दू धर्मका गुणाख्यान प्रस्तुत किया, यह सब देखकर, सुनकर मेरा अन्तर हिन्दुत्व-गौरव और आत्मोत्सर्गके भावोंसे भर गया।

[२] श्रीमद्भागवत-गौरव

सन् १९७० के अगस्त मासमें मैं कल्याण आश्रमके अध्यक्ष महोदय श्रीदेशपाण्डेजीके साथ गीतावाटिका आया था। हम लोगोंके द्वारा वनवासी बन्धुओंके मध्य हिन्दुत्व भावको सुदृढ़ बनानेका कार्य चल रहा है। कार्यकी प्रगतिके सम्बन्धमें कुछ परामर्श श्रीभाईजीसे प्राप्त करना था, यही हमारे आगमनका उद्देश्य था। हमारा यह उद्देश्य तो सिद्ध हुआ ही, पर इसीके साथ एक बड़ा प्रेरक दृश्य देखनेको मिला।

श्रावणी पूर्णिमाका दिवस होनेसे पूज्य श्रीभाईजी अपने कमरेके बाहर छतपर बैठे हुए थे। सायाह्नका समय था। शहरकी अनेक बहिनोंने आकर श्रीभाईजीके हाथमें राखी बाँधी। एक बहिन कलकत्तासे भी आयी थी। उसने भी श्रीभाईजीके हाथमें राखी बाँधी और निवेदन किया— भाईजी! हमें भी भगवान श्रीकृष्णका दर्शन करा दें।

श्रीभाईजी उसकी बात सुनकर चुप रहे। फिर थोड़ी देर बाद सभी उपस्थित लोगोंके समक्ष श्रीभाईजीने उस बहिनसे कहा— *श्रीमद्भागवत भगवान श्रीकृष्णका वाङ्मय स्वरूप है और श्रीमद्भागवत सर्व जनके लिये सर्वत्र सुलभ है। श्रीभागवतजीके दर्शन-वन्दन-वाचनसे, उसके सेवनसे और उसके आश्रयसे ऊँची-से-ऊँची स्थितिकी प्राप्ति हो सकती है। संतों द्वारा बतलायी गयी इस बातपर सहज विश्वास होते ही सारी बात बन जायेगी। तुम विश्वास करो, भागवत सत्ता सर्वत्र व सदैव है।*

मैं नहीं कह सकता कि कलकत्तेवाली उस बहिनके हृदयमें यह बात कितने अंशतक उतर पायी, पर मुझे ते इससे बड़ी प्रेरणा मिली। प्रेरणा भला क्यों नहीं मिलती ? इस कथनका आधार श्रीभाईजीका जीवन जो था। ■

बाबू श्रीरामसिंहजी

विषम परिस्थितिमें कर्मठता

बात उस समयकी है, जब भारतको स्वतंत्रता-प्राप्ति हो चुकी थी। पहले मैं उत्तर प्रदेश सरकारके लखनऊ मन्त्रालयमें आशुलिपिक (स्टेनो) का कार्य करता था। गीताके प्रति मेरी बड़ी निष्ठा है। गीताप्रेससे संचालित गीता-रामायण-परीक्षा-समितिसे भी मेरा सक्रिया सम्पर्क रहा है। हमलोगोंने गीता-प्रचारके उद्देश्यसे लखनऊमें एक दुर्गा गीता विद्यालयकी स्थापना कर रखी है।

उन दिनों श्रीमती सरोजिनी नायडू उत्तर प्रदेशकी राज्यपालिका थीं। गीता विद्यालयके वार्षिकोत्सवमें अध्यक्ष-पदके लिये श्रीमती नायडूको आमन्त्रित किया गया और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया, परंतु मेरी नजरमें कोई ऐसा आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं आया, जिसे बुला लिया जा सके, जिसका गीतापर अधिकार हो तथा जो आधिकारिक वाणीमें बोल सके।

मैंने अपने मित्र श्रीपरमेश्वरीप्रसादजी अग्रवालसे इसकी चर्चा की। उन्होंने पूज्य श्रीभाईजीके नामका सुझाव दिया और यह मुझको तुरन्त जँच गया। श्रीभाईजीको आमन्त्रित करनेके लिये गोरखपुर फोन किया गया। पहले तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया, पर जब कई फोन किये गये, तब उन्होंने कहा— भाई ! आपलोग मानेंगे नहीं। फोनपर व्यर्थ खर्चा करते हैं। आप तिथि बता दीजिये। मैं आ जाऊँगा।

फोनपर उनको गीता विद्यालयके वार्षिकोत्सवकी निश्चित तिथि बता दी गयी। श्रीभाईजीसे स्वीकृति मिलते ही सारी चिन्ता दूर हो गयी। विद्यालयमें उत्सव मनानेकी तैयारी की जाने लगी। कल उत्सव होनेवाला है और आज गीता विद्यालयके प्रांगणमें तम्बू तान दिया गया है। कुर्सियाँ लगा दी गयी हैं। पहले दिन जितनी आवश्यक व्यवस्था होनी चाहिये, वह कर दी गयी। अब विधिके विधानकी बात क्या कही जाय ? रातके साढ़े दस बजेसे वर्षा आरम्भ हुई और घनघोर वर्षा, वह भी घंटोंतक। सारी जमीन अत्यधिक भीग गयी। तम्बू लटक गया। कुर्सी-टेबुल सभी भीग गये।

विधिके विधानकी प्रतिकूलताका सिलसिला अभी जारी था। गाड़ी गोरखपुरसे लखनऊ सबेरे छः बजे पहुँचती है, पर किसी कारण गाड़ी लेट हो गयी तीन घंटे। श्रीभाईजीको लेनेके लिये श्रीपरमेश्वरीप्रसादजी स्टेशन गये। श्रीभाईजीके साथ थे पूज्य बाबा, श्रीरामसनेहीजी और शायद एक नौकर। पूज्य बाबाको श्रीमोतीलालजी जालानके यहाँ ठहराकर और श्रीभाईजीको अपने साथ लेकर वे जल्दी-जल्दी श्रीदुर्गा गीता विद्यालय पहुँचे। जब वे लोग पहुँचे, तब साढ़े दस बजा था और उत्सव आरम्भ होनेवाला था ग्यारह बजे, पर पंडालका हाल ही कुछ और था,

बिल्कुल बेहाल। वर्षाके कारण उत्पन्न अस्त-व्यस्तता ज्यों-की-त्यों थी। तम्बू झुका हुआ पड़ा है, कुर्सियाँ भीगी पड़ी हैं, मंचकी कोई व्यवस्था नहीं है। वहाँपर संयोगसे न मैं था और न अध्यापक एवं विद्यार्थिगण इस अस्त-व्यस्तताको दूर करनेका प्रयत्न कर रहे थे। इस स्थितिको देखकर श्रीपरमेश्वरीप्रसादजी एकदम घबड़ा गये और वे सोचने लगे– अब क्या होगा ? साढ़े दस बज गये, कोई प्रबन्ध नहीं है और श्रीमती सरोजिनी नायडू ठीक समयसे पहुँच जायेंगी।

परिस्थितिकी विषमताको श्रीभाईजीने भी भाँप लिया, पर अब न तो किसीको दोष देनेका समय था और न हाथ-पर-हाथ रखकर बैठनेका अवसर था। उन्होंने कहा– घबड़ानेकी जरूरत नहीं। आओ, सब मिलकर काम करें। चन्द मिनटोंमें सारा काम हो जाता है।

वहाँ जितने अध्यापक और विद्यार्थी थे, श्रीभाईजीने सबको उत्साहित किया, सबको काम बताया और वे काम स्वयं करने लगे और कराने लगे। बाँस पकड़कर तम्बू तान दिया गया। तम्बूपर पड़ा हुआ पानी गिराया गया। फिर तम्बूकी रस्सियाँ बाँधी गयीं। कुर्सिया पोंछी गयीं, टेबुल पोंछे गये। मंचको ठीक किया गया और मंचसे लेकर विद्यालयके प्रवेशद्वारतक पावड़े बिछाये गये। बात अविश्वसनीय लगती है, पर यह शत-प्रतिशत सत्य है कि यह सारा काम लगभग बीस मिनटमें हो गया। श्रीभाईजीकी सूझ, निर्देशन, श्रम तथा प्रोत्साहनने सारा काम बना दिया। ठीक पाँच मिनट पहले श्रीमती नायडूके स्वागतके लिये श्रीभाईजी, श्रीपमेश्वरीप्रसादजी, मैं तथा अन्य लोग प्रवेशद्वारपर आकर खड़े हो गये। समयसे श्रीमती सरोजिनी नायडू आयीं तथा उनको ले जाकर मंचपर बैठाया गया। श्रीमती नायडूने श्रीभाईजीके प्रति बहुत सम्मान प्रदर्शित किया।

वार्षिकोत्सवकी कार्यवाही आरम्भ हुई। दो-तीन कार्यक्रमोंके बाद श्रीभाईजीका गीतापर पन्द्रह मिनटतक भाषण हुआ। भाषण इतना उत्कृष्ट था कि सारे श्रोता विमुग्ध हो गये। स्वयं श्रीमती नायडू प्रभावित हो गयीं। पूर्व योजनानुसार श्रीमती नायडूके बोलनेका कोई कार्यक्रम नहीं था, पर उन्होंने कहा कि मैं भी थोड़ा बोलूँगी। वे बोलनेके लिये खड़ी हुईं और गीतापर लगभग दस-बारह मिनटतक बोलीं। श्रीमती नायडूने यहाँतक कहा– श्रीपोद्दारजीके भाषणको सुनकर उसी तरहकी प्रसन्नता हुई, जिस तरह गाँधीजीके भाषणको सुनकर हुआ करती थी।

श्रीभाईजीकी उपस्थितिसे बिगड़ी परिस्थिति सर्वथा सुधर गयी, परिस्थिति ऐसी सँवरी कि किसीको पूर्व-विषमताका आभासतक नहीं हो पाया। ■

श्रीसर्वजीतजी शुक्ल

[१] पवित्र प्रेमके निर्मल निर्झर

सन् १९४८ ई. में महात्मा गाँधीका गोडसेकी पिस्तौलकी गोलीसे प्राणान्त होते ही देशका सम्पूर्ण वातावरण शोकाकुल हो गया। गोडसेको सरकारने गिरफ्तार कर लिया। गाँधी-हत्याकाण्डसे जो-जो सम्बद्ध थे और जिन-जिनपर सन्देह था, उन सभीको सरकारने गिरफ्तार कर लिया, पर अनेक निर्दोष व्यक्ति भी जेलके सींकचोंमें बन्द हो गये। गिरफ्तारीका यह चक्र

बहुत दिनोंतक चलता रहा। समाजमें विशिष्ट कहलाये जानेवाले लोगोंके मनमें भी ईर्ष्या-द्वेष रहता ही है और इस कारण जीवनमें मनोमालिन्यके प्रसंग आ ही जाया करते हैं। ईर्ष्या-द्वेष जनित क्षुद्रेच्छाओंको परितुष्ट करनेका यह एक अच्छा मौका हाथ लग गया। जिससे कुछ भी खिन्नता या मनमुटाव होता, उसे सन्देहके आधारपर अथवा इससे मिलते-जुलते किसी अन्य बहानेपर गिरफ्तार करवा दिया जाता।

श्रीभाईजीको भी गिरफ्तार करवानेके लिये कुछ लोग सचेष्ट हो उठे और अपने क्षुद्र मनोरथको पूर्ण करनेके लिये मिथ्या आरोप लगा दिया गया कि गाँधीजीकी हत्यामें श्रीभाईजीका भी किसी-न-किसी रूपमें हाथ है। आरोप लगानेवालोंका एक ग्रुप था। इस ग्रुपके शोरसे प्रभावित होकर सरकारके कुछ पदाधिकारी श्रीभाईजीको गिरफ्तार करनेकी बात सोचने लगे, किन्तु भक्षककी अपेक्षा रक्षकके हाथ अधिक लम्बे और बहुत मजबूत होते हैं। श्रीभाईजीके जीवनका प्रेरक तत्त्व एक महान आध्यात्मिक उद्देश्य रहा है और उस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये गीताप्रेसको चलाना तथा प्रतिमास 'कल्याण' को निकालना आवश्यक था। श्रीभाईजी इन तत्कालीन विभिन्न अभद्र गतिविधियोंसे तनिक भी विचलित न होते हुए अपने कार्यमें संलग्न रहे और चुपचाप गीताप्रेसके कार्यका संचालन करते रहे। आरोप लगानेवालोंने तो यह चाहा था कि गोडसेकी तरह श्रीभाईजीको भी कठोर सजा मिल जाय और यह गीताप्रेस बन्द हो जाय। यदि यह नहीं हो पाये तो कम-से-कम गीताप्रेसको मिलनेवाले कागजका कोटा बन्द हो जाय। कागजका कोठा बन्द होनेसे अपने आप गीताप्रेसका काम ठप्प पड़ जायेगा। अप-प्रचार-कर्ताओंने काफी झूठी बातें अफवाहके रूपमें फैलायी और समाचार-पत्रोंमें छपवायीं, किन्तु प्रभु-कृपासे धीरे-धीरे सब शान्त हो गया तथा कुप्रचार और आरोपका मिथ्यापन समाजके सामने आ गया। क्रमशः सूर्यपरसे बादलोंका आवरण हट गया। कालान्तरमें तूफानके चिह्न भी शेष नहीं रहे।

जिन्होंने झूठा आरोप लगाया था, उनके प्रति श्रीभाईजीके मनमें रंचमात्र दुर्भाव नहीं आया, अपितु उनके मंगलकी मधुमयी कामनासे हृदय सदा भरा रहता। श्रीभाईजी उनका सतत शुभ चाहते रहते। कुछ समय बाद आरोप लगानेवाले एक भाईकी धर्मपत्नी रुग्ण होकर शय्याग्रस्त हो गयी। उनकी स्थिति दिन-प्रति-दिन बिगड़ने लगी। उनकी सुपुत्रीका फोन श्रीभाईजीके पास आया— मेरी माताजी कई दिनसे खाटपर पड़ी हैं। वे पूज्या माँ (पूज्य श्रीभाईजीकी धर्मपत्नी) से मिलना चाहती हैं।

श्रीभाईजीने यह समाचार पूज्या माँको सुनाया। माँने तुरन्त चलनेको कहा और दोनों ही मिलनेके लिये उसी समय कारसे रवाना हो गये। उनके घरपर गये, मिले, बैठे और जितनी अधिक सान्त्वना दे सकते थे, उनको दी। उनकी धर्मपत्नीके मुखमण्डलपर पश्चात्तापकी कुछ गहरी रेखाएँ थीं, क्षमाकी कुछ भावभरी याचना थी, शान्तिकी कुछ मीठी-मीठी लहरियाँ थी तथा इस प्रकारके कुछ और भी भाव रह-रह करके आ-जा रहे थे। श्रीभाईजीको इससे क्या मतलब कि वे कैसे हैं, उन्होंने क्या किया है और उनका पूर्व इतिहास क्या है। सामनेवाला जो भी हो और जैसा भी हो, पर हमें तो प्यार देना है। पूज्य श्रीभाईजी और पूज्या माँके हृदयके पवित्र प्रेमके निर्मल निर्झरकी शीतल फुहारसे कमरेका वातावरण भीगने लगा। इस प्यारसे वे आप्यायित हो उठीं। आगे भी अनेक बार उनके घरपर जानेका क्रम बना रहा। यह ठीक ही कहा गया है कि एक बार आँधी तो आती है, पर अन्ततः सत्य एवं स्नेहकी ही विजय होती है।

[२] भगवत्तत्त्व निष्ठ व्यक्तित्व

एक बार मैं अपने कमरेमें कागजोंकी फाइल उलट रहा था। जिस कागजकी जरूरत थी, उसको खोजते-खोजते अचानक मेरे हाथ लग गया पूज्य श्रीभाईजीका एक लेख, जो उन्होंने सन् १९१२ में लिखा था और जो 'अभ्युदय' नामक समाचार-पत्रमें छपा था। हाथमें आते ही मैं उसी समय उसको आरम्भसे अन्ततक पढ़ गया। उस लेखमें थी देश-भक्तिकी उबलती भाषामें विप्लवी भावना। क्या कोई उस समय कल्पना कर सकता था कि जो लेखनी धधकती ज्वालामुखीके समान आग उगल सकती है, वह भविष्यमें माधुर्यकी शीतल धारा प्रवाहित कर देगी, ऐसी शीतल धारा, जिसके *'दरस परस मज्जन अरु पाना'* से भवाग्नि-दग्ध मानवको परम शान्ति, परम आनन्दकी प्राप्ति हो सके? जो तथ्य कल्पनातीत था, वह आज यथार्थ सत्य है। ऐसी शीतल धारा उसी व्यक्तिकी लेखनीसे निर्झरित हो सकती है, जो भगवत्साक्षात्कारी हो और जो भागवती शक्ति एवं भागवती दृष्टिसे सम्पन्न हो। परमानन्द एवं अक्षय शान्तिकी बातें प्रायः प्रवचनों एवं पत्रिकाओंमें सुनने-पढ़नेको मिलती हैं, पर वह चर्चा अपेक्षित प्रभावोत्पादिनी नहीं हो पाती, इसीलिये कि उस कथनके पीछे खरा जीवन नहीं होता। वह वाणी वक्ता या लेखकके जीवनके भीतरसे आती नहीं, अतः श्रोता या पाठकके हृदयके भीतर जाती भी नहीं। सच्चा जीवन ही वाणीमें सच्ची शक्तिका संचार करता है। संत तुकारामने कहा है कि कोई स्त्री अपने पेटपर कपड़ा बाँध ले तो क्या वह गर्भवती हो गयी? गर्भवतीके लक्षण तो कुछ और ही होते हैं। इसी प्रकार सच्चा जीवन और सच्ची वाणीकी शक्ति कुछ और ही हुआ करती है और इस सच्चाईका मूर्तिमान स्वरूप था पूज्य श्रीभाईजीका आध्यात्मिक व्यक्तित्व। श्रीभाईजीने जो कहा और जो लिखा, वह उनके भगवत्तत्त्व-निष्ठ जीवनका अनुभूत सत्य था। उनके द्वारा लिखित साहित्यमें यदि एक ओर अनुभूत सत्यकी गहरी सच्चाई है तो दूसरी ओर उसकी मात्रा भी विपुल है, जो अध्यात्म-पथके पथिकोंको अमित प्रकाश प्रदान कर रही है।

जब-जब मुझे अपने मित्रोंके मध्य पूज्य श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कुछ कहनेका अवसर मिलता है, मुझे बड़े आनन्दकी अनुभूति होती है। सन् १९६८ की बात है। शिमलामें विभिन्न समाचार-पत्रोंके सम्पादकोंका अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ था। उस सम्मेलनमें मुझे भी भाग लेनेका अवसर मिला था। 'जागरण' दैनिक पत्रके सम्पादक श्रीनरेन्द्रमोहनजीके पासवाले कमरेमें मैं ठहरा हुआ था। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरा गीताप्रेससे, 'कल्याण' पत्रिकासे तथा श्रीभाईजीसे निकट सम्पर्क है तो उन्होंने मुझको बातचीत करनेके लियें अपने पास बुला लिया। मैं श्रीनरेन्द्रमोहनजीके पास बैठा हुआ था, वहीं पटनासे प्रकाशित होनेवाले अँगरेजी समाचार-पत्र 'सर्चलाइट' के सम्पादक श्रीसरकार महोदय भी आ गये। श्रीसरकार ईसाई मतावलम्बी थे, अतः श्रीनरेन्द्रमोहनजीने मुझसे कहा– आप श्रीसरकार महोदयको 'कल्याण' पत्रिकाके बारेमें कुछ बतलाइये तथा उसके सम्पादक श्रीपोद्दारजीका कुछ परिचय दीजिये।

अपनी अल्प जानकारीके आधारपर मैं लगभग पन्द्रह मिनटतक बोलता रहा और मैंने प्रस्तुत किया श्रीभाईजीके व्यक्तित्वका मात्र पत्रकारिता-पक्ष। मैंने उनको बतलाया– सम्पादक श्रीपोद्दारजी वर्ष भरमें 'कल्याण' पत्रिकाके बारह अंक प्रकाशित करके लगभग १४०० पृष्ठोंकी सामग्री देते हैं। इसमें प्रथम अंक विशेषांक और द्वितीय अंक (तथा कभी-कभी तृतीय

अंक भी) परिशिष्टांक होता है और शेष साधारण अंक होते हैं। विशेषांक और परिशिष्टांक, ये दोनों मिलकर लगभग नौ सौ पृष्ठसे अधिक ही होते होंगे। इन्हें आप एक विश्वकोष कह सकते हैं। ये जिस विषयपर होते हैं, उस विषयसे सम्बन्धित जितनी भी सामग्री प्राप्य हो सकती है, वह सारी उसमें उपलब्ध रहा करती है। उस सामग्रीमें न केवल हिन्दू-धर्मकी महिमाका उद्‌घाटन होता है, अपितु विश्वके अन्य धार्मिक मतोंकी महानताको भी स्थान दिया जाता है।

मेरी बातपर श्रीसरकार महोदयको विश्वास नहीं हुआ। मेरे कथनपर संदेह व्यक्त करते हुए उन्होंने आपत्ति की– मुझे ऐसा लगता है कि आप 'कल्याण' पत्रिकाके बारेमें कुछ बढ़ा-चढ़ाकर बोल रहे हैं। मुझे कोई विशेषांक देखनेको मिले तो मैं कुछ सही धारणा बना पाऊँ।

मैंने उसी आस्थाके स्वरमें कहना आरम्भ किया– आप ईसाई हैं, अतः आप उसके कार्यकी गहराई और कार्यके विस्तारका अनुमान नहीं कर पा रहे हैं। यहाँ कोई पुस्तकालय हो तो उसमें आप कल्याणके विशेषांक देख सकते हैं।

श्रीसरकार महोदयके दिमागमें बात कुछ ज्यादा बैठ गयी और उन्होंने सोचा कि इस बारेमें यथार्थ आकलन होना चाहिये। हम दोनों व्यक्ति शहरमें निकले। शिमला शहरकी माल रोडपर एक पुस्तक-विक्रेताकी दूकानपर संयोगसे 'हिन्दू-संस्कृति' विशेषांक देखनेको मिल गया। नौ सौ पृष्ठों वाला यह विशेषांक श्रीसरकार महोदय अपने कमरेपर ले आये। वे दूसरे दिन मुझसे मिले और कहने लगे– कल मैंने आपसे कहा था कि आप बढ़ा-चढ़ाकर बता रहे हैं, पर अब तो मेरी धारण यह है कि आपने कम ही कहा है। अब मैं यह जानना चाहूँगा कि वहाँके सम्पादकीय विभागमें कितने व्यक्ति हैं और प्रूफ रीडिंग कौन करता है?

पूर्वापेक्षा अधिक आस्थापूर्वक मैंने कहा– क्या आप विश्वास करेंगे कि इसके एक-एक शब्द एवं विराम चिह्न आदिकी अंतिम प्रूफ रीडिंग स्वयं श्रीपोद्दारजी करते हैं। सारा-का-सारा मैटर जब श्रीपोद्दारजीकी निगाहोंके नीचेसे निकल जाता है, तभी वह छपता है। इसके अलावा सम्पादकीय विभागमें विशेषांकके कार्यकी दृष्टिसे चार-पाँच व्यक्ति होंगे। चार-पाँच व्यक्तियोंका कार्य तो अकेले श्रीपोद्दारजी कर लेते हैं।

श्रीसरकार महोदय विस्फारित नेत्रोंसे देखते हुए कहने लगे– आप तो ऐसी-ऐसी बात कहने लगते हैं, जिसपर विश्वास करनेसे मन हिचकता है।

मैंने पुनः निवेदन किया– आपका यह हिचकना ही सिद्ध कर रहा है कि श्रीपोद्दारजी मानवातीत अलौकिक क्षमतावाले व्यक्ति हैं। फिर आप यह भी देखें कि इस पत्रिकामें कहीं एक भी विज्ञापन है क्या? आजकल बिना विज्ञापनके समाचार-पत्र टिक नहीं पाते, पर 'कल्याण' पत्रिका इसका एक अद्‌भुत और खरा अपवाद है। 'कल्याण' पत्रिकाने सिद्ध कर दिया है कि यदि मानव हितकारी सही सामग्री प्रकाशित की जाय तो बिना विज्ञापनके भी पत्रिका समाजमें जमी रह सकती है। फिर आप उनके सम्पादन-शैलीकी गम्भीरतापर गौर करें। इन विशेषांकोंके पृष्ठोंपर एक भी ऐसा वाक्य नहीं है, जो किसीकी भी भावनाओं-मान्याताओंको ठेस पहुँचाये, चाहे वह किसी धर्म या मतका अनुयायी हो। विचारोंकी इस विशदता-विशालतामें श्रीपोद्दारजीके उदार एवं उन्नत चिन्तनकी झलक आपको दिखलायी देगी ही।

श्रीसरकार महोदयका विस्मय बढ़ता ही जा रहा था। उन्होंने चकित मनसे, जिसमें थोड़ा अविश्वासका भी भाव था, ऐसे सहमे हुए मनसे उन्होंने पूछा– क्या ढलती आयुवाले व्यक्तिसे इतना परिश्रम सम्भव हो सकता है ? इतना सारा काम कर लेना क्या साधारण बात है ?

मैंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा– साधारण बात नहीं है, तभी तो वे अलौकिक व्यक्ति हैं। वे अपौरुषेय हैं। गीताप्रेसके कार्यका आरम्भ एक छोटी-सी ट्रेडिल मशीनसे हुआ था, पर आज यह ऐसा प्रेस है, जिसकी देश-विदेशमें सर्वत्र ख्याति है तथा इसके प्रकाशनोंकी आधिकारिक वाणीके रूपमें मान्यता है। आदिशंकराचार्यके बाद श्रीपोद्दारजीके रूपमें एक ऐसे महान व्यक्तित्वका प्रादुर्भाव हुआ, जिससे धर्म-जागरणका अद्भुत कार्य हुआ और हिन्दू-धर्म एवं हिन्दू-संस्कृतिका यश सर्वत्र परिव्याप्त हो गया।

श्रीसरकार महोदय स्वयं एक सम्पादक थे और वे अच्छी तरह जान रहे थे कि पत्रकारिता-क्षेत्रमें सफलता पानेके लिये कैसी विकट घाटियोंको पार करना पड़ता है। यदि हिन्दू-संस्कृति विशेषांक सामने नहीं होता तो वे मेरे कथनको मात्र अतिशयोक्ति कहकर फिर मुझसे दुबारा न मिलना चाहते और न बात करना चाहते, पर क्रमशः उनकी धारणामें परिवर्तन हुआ। वे पूज्य श्रीभाईजीको आदरके भावसे देखने लगे। विदा होते समय उन्होंने कहा था कि मेरे पास श्रीपोद्दारजीका साहित्य भिजवाइयेगा। गोरखपुर आकर मैंने अनेक पुस्तकें भिजवायी। यह भी संयोगकी बात है कि चार वर्ष बाद १९७२ में श्रीसरकार महोदयसे मेरी भेंट हो गयी। तब उन्होंने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा– आपके मिलनसे और संलापसे मेरी अनेक भ्रान्तियाँ दूर हुई हैं। यदि आपसे बात नहीं हुई होती और मैंने उन पुस्तकोंको नहीं देखा होता तो मैं श्रीपोद्दारजीके बारेमें भ्रमित ही रहता। अपना आभार व्यक्त करते हुए मैं आपको हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

मैं ऐसा सोचता हूँ और मेरा सोचना सही ही है कि पूज्य श्रीभाईजीके द्वारा लिखित-अनूदित-सम्पादित विपुल और गम्भीर साहित्यको देखकर, पढ़कर और समझकर देशमें-विदेशमें बहुतोंकी धारणामें श्रीसरकार महोदयके समान परिवर्तन आया होगा और वे पूज्य श्रीभाईजीके प्रति विनत हुए होंगे। हिन्दू धर्म, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू दर्शन, हिन्दू जीवनके वैशिष्ट्यको दूर-दूरतक पहुँचानेका जो कार्य उनके भगवत्तत्त्वनिष्ठ व्यक्तित्वके द्वारा हुआ है, वह अभूतपूर्व है, अद्वितीय है। हिन्दी साहित्यके महान कवि श्रीसुमित्रानन्दपंतके शब्दोंको उद्धृत करके मैं अपनी लेखनीको विराम देना चाहूँगा। उन्होंने कहा है–

'कल्याण'के सम्पादनद्वारा उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा तत्सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थों, पुराणों आदिमें जो कुछ सनातन मूल्यवान, श्रेष्ठ तथा वरेण्य था, उसका सहस्रों नर-नारियोंमें प्रचार-प्रसार कर उन्हें नवीन आस्था, स्फूर्ति तथा भारतीय जीवन-आदर्शोंके प्रति श्रद्धा एवं दृढ़ निष्ठा प्रदान की। उन्होंने इस युगमें भारतीय चेतनाके असीम अकूत समुद्रका पुनः मन्थन कर, उससे अनश्वर कान्तिके मणिरत्न निकालकर लोगोंके हाथमें जिस संजीवनी-सुधाका अक्षय पात्र रखा, वह उन्हीं-जैसी महान आत्माके अजेय पौरुषसे सम्भव था। गीताप्रेसके समस्त प्रकाशन जिस दिव्य आलोकसे सदैव मण्डित रहे हैं, वह श्रीपोद्दारजीकी ही सूझ-बूझ तथा अथक परिश्रम-परीक्षण-निरीक्षणका परिणाम है।

[३] भगवन्नाम निष्ठ व्यक्तित्व

विभिन्न समाचार पत्रोंसे सम्पर्क होने तथा पत्रकारिताके क्षेत्रमें कार्य करनेके कारण मुझे भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भ्रमण करने तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंसे मिलनेका अवसर सुलभ होता रहता है और मिलनेवालोंमें विदेशी लोग भी हैं। एक बार गोरखपुरके शिशु मन्दिरमें ट्रिनीडाडसे आये हुए एक हिन्दू भाईसे भेंट हो गयी। उनका नाम था श्रीशिवशंकरजी दूबे। वे ट्रिनीडाडमें वहाँकी सरकारमें विपक्षदलके नेता थे और सिंगापुरमें किसी राजनैतिक सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये जा रहे थे। यात्राके बीचमें भारत भी आ गये थे। मेरे सामने ही शिशु मन्दिरमें उनकी भेंट श्री बी.के. मित्रासे हो गयी, जो गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले चित्रोंके विख्यात चित्रकार थे और जो पूज्य श्रीभाईजीके निर्देशके अनुसार चित्र बनाया करते थे। श्री बी.के. मित्रासे भेंट होते ही श्रीशिवशंकरजीने बड़ी श्रद्धाके साथ उनको प्रणाम किया और विभोर स्वरमें वे कहने लगे– हमें भला क्या पता कि भगवान किसे कहते हैं? यदि आपके चित्रोंके द्वारा भगवानके साकार स्वरूपकी कुछ भावना होती है तो श्रीपोद्दारजीके लेखोंके द्वारा भगवानके तात्त्विक स्वरूपकी कुछ धारणा बनती है। विदेशमें रहनेवाले हमलोगोंको आपका प्रकाशन ही धर्म-पथपर चलाता है और ध्यान-जप सिखाता है।

श्रीशिवशंकरजीने बहुत कुछ कहा। यह तो उनके कथनका मात्र सार है। जिस समय वे अपने भावभरे उद्गार व्यक्त कर रहे थे, उनकी विभोरावस्था देखकर मैं बड़ा प्रसन्न और विस्मित हो रहा था पूज्य श्रीभाईजीके द्वारा हो रहे कार्यके प्रभाव-विस्तारकी कल्पना मात्रसे। श्रीभाईजीका कर्तृत्व एक ऐसा प्रखर प्रकाश स्तम्भ है, जो देश-विदेशके लोगोंको आध्यात्मिक आलोक प्रदान कर रहा है। यह तो मात्र एक उदाहरण है। जब-जब मिलनेवाले व्यक्तियोंसे मुझे ऐसे भाव भरे उद्गार सुननेको मिलते हैं, मनमें पूज्य श्रीभाईजीके कार्योंके प्रति गौरव-भाव परिव्याप्त हो जाता है।

पूज्य श्रीभाईजीके अन्तिम दिवसोंकी बात है। वे मृत्यु-शय्यापर थे। मैं गोरखनाथ-पीठाधिपति पूज्य महन्त श्रीअवैद्यनाथजी महाराजके पास बैठा हुआ था। महाराजजीने कहा– श्रीभाईजी अत्यधिक रुग्ण हैं। ऐसा लगता है कि यह रुग्णता विघातक सिद्ध होगी। चलो, उनसे मिल आवें।

फिर महन्तजी महाराज और मैं गोरखनाथ मन्दिरसे गीतावाटिका आये। श्रीभाईजी अत्यधिक रुग्ण थे ही। वे खाटपर लेटे हुए थे। महन्तजी महाराजके आनेपर वे खाटपर उठकर बैठ गये तथा उन्होंने महाराजजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। महाराजजीने देखा कि श्रीभाईजीके हाथमें कागज-कलम है। महन्तजी महाराजने जिज्ञासा की– भाईजी! आपकी काया क्षीण हो गयी है। शक्तिका भी ह्रास हो गया है। रुग्णताके कारण शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया है, ऐसी दशामें आपके हाथमें लेखनी है। आप अभी भी काम किये जा रहे हैं?

श्रीभाईजी विनम्र स्वरमें धीरे-धीरे कहने लगे– *जीवनकी सारी वासनाएँ समाप्त हो चुकी हैं। मैं उन सब द्वन्द्वोंसे मुक्त हो चुका हूँ। बस, एक वासना अभी भी मनमें बनी हुई है। भगवन्नामके प्रति मेरे मनमें आस्था है। मेरा विश्वास है कि भगवन्नामका आश्रय मानव मात्रके लिये अशेष कल्याणकर है। जीवन तो अवसानकी ओर जा रहा है, पर इस लेखनीके माध्यमसे*

भगवन्नामाश्रयकी भावनाका यदि कुछ प्रसार हो सके तो बड़ा उत्तम। यह वासना तो अभी भी है ही।

मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए श्रीभाईजीके मुखसे आस्थाके इन शब्दोंको सुनकर महन्तजी महाराज नख-शिख सिहर उठे और वे पुलकित स्वरमें कहने लगे– भगवन्नामके प्रति सुदृढ़ आस्था तथा लेखनीके द्वारा भगवन्नाम प्रचारकी शुभद वासना सदैव आपके हृदयमें बनी रहे, यह मेरी भगवानसे प्रार्थना है।

मैं तो हैरान था पूज्य श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर। उनका जीवन अवसानोन्मुख था। वे थे अत्यन्त रुग्ण, अत्यन्त क्षीण, अत्यन्त जर्जर, पर उनकी आत्मामें थी भगवन्नामके प्रति अडिग आस्था और भगवन्नाम-निष्ठाके प्रचारके प्रति अतुल तत्परता। भगवन्नाम-निष्ठाका यह अद्‌भुत चित्र था, एकदम जीता-जागता चित्र। भगवन्नाम प्रचारकके रूपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका नाम लिया जाता है। यह बात इतिहासके पृष्ठोंकी है। उस बातको मैंने केवल सुना है, देखा नहीं है, पर पूज्य श्रीभाईजीके भगवन्नाम-प्रचारका वृत्त तो मेरी आँखों देखी हुई बात है। 'कल्याण' पत्रिकाके पृष्ठोंमें अनुरोध करके, नामजप विभागकी स्थापना करके, अखण्ड नाम संकीर्तन अनुष्ठानको आयोजित करके, सम्पर्कमें आनेवालोंको तुलसीमाला प्रदान करके, इस प्रकार विविध माध्यमोंसे भगवन्नाम-प्रचार द्वारा उन्होंने वर्तमान घोर कलिकालमें आध्यात्मिक वातावरणकी जैसी सृष्टि की, वह अपने ही ढंगकी है। पैसा-पद-प्रभुता-प्रतिष्ठा आदिकी दृष्टिसे उनसे अधिक समर्थ व्यक्ति समकालीन समाजमें थे और हैं, पर उनके द्वारा यह कार्य नहीं हो पाया। होता कैसे? इसके लिये चाहिये था भगवन्नाम-निष्ठ व्यक्तित्व और इस व्यक्तित्वके साकार स्वरूप थे विश्ववन्द्य श्रीभाईजी। ■

श्रीनारायणप्रसादजी शर्मा

श्रद्धालु श्रीशुकदेवजी

विश्वविख्यात धार्मिक संस्था गीताप्रेसके संस्थापक हैं परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पर इस संस्थाको खड़ा करनेमें श्रीशुकदेवजीका महान योगदान नीवके पत्थरके समान सदैव सम्माननीय रहेगा। श्रीशुकदेवजी गीताप्रेसके एक ऐसे निस्पृह-निरभिमानी-कर्तव्यपरायण-कर्मठ कार्यकर्ता थे, जिन्होंने गीता और रामायणके संदेशको घर-घर पहुँचानेके लिये अपने जीवनकी आहुति दे दी। उनका सरल-सादा-सात्विक-साधनानिष्ठ-सेवासंलग्न जीवन गीताप्रेसके निर्माण एवं अभ्युदयके इतिहासका एक अभिन्न और अमर अंग है।

जब श्रीशुकदेवजीकी मृत्युका हृदयद्रावक समाचार चित्रकूटसे गीताप्रेस आया और जब श्रीभाईजीने इसे सुना तो वे एक बार स्तम्भित रह गये थे। उन्होंने विह्वल स्वरमें कहा था– आज मेरी आन्तरिक रुचिको परखनेवाला, बिना संकेत किये ही मेरी सुख-सुविधाका ध्यान रखनेवाला, मनुहार करके या अकड़ करके मेरी सेवा-सुश्रुषाका प्रबन्ध करनेवाला, अपनी बातकी टेक निभानेवाला, निष्कपट भावसे प्रीति करनेवाला, सेवाका प्रतिफल नहीं चाहनेवाला मेरा छोटा भाई आज मुझे छोड़कर भगवन श्रीरामके साकेतधाममें पधार गया। उनकी निष्ठा

और कर्मठतासे मेरे जीवनके न जाने कितने ही आयोजन सफल व पूरे हुए। श्रीशुकदेवजीके साथ मेरा कैसा आन्तरिक स्नेह-सम्बन्ध था, यह एक रहस्य ही रहेगा।

जब श्रीभाईजी गोरखनाथ मन्दिरके समीप एक उद्यानमें निवास करते थे, तब उस उपवनके हरित लतागुल्मोंके संकुल झुरमुटोंमें सत्संगका आयोजन होता था। वे एकदिन भगवान श्रीकृष्ण तथा गोपीतत्त्वके परम मधुर भावकी झाँकी करा रहे थे कि उसको सुन करके श्रीशुकदेवजीको भावावेश हो आया। शरीरकी सुधि नहीं रही। इस प्रकारका भावावेश उनमें अनेकों बार देखा गया था। उस स्थितिमें उनको विलक्षण आनन्द और शान्तिका अनुभव होता था। एक बार सत्संगमें श्रीभाईजीने श्रीनैमिषारण्य तीर्थका वर्णन करके वहाँके पौराणिक सत्संगका चित्रण किया। श्रीशुकदेवजीको भावावेश हो गया और उसी स्थितिमें आपको नैमिषारण्यके ज्ञान-यज्ञमें सम्मिलित अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंके साथ-साथ श्रीसूतजीका दर्शन हुआ। ये ऐसे भावुक हृदयके थे।

श्रीभाईजीके प्रति श्रीशुकदेवजीकी अगाध प्रीति थी। जब श्रीभाईजीने साधक कमेटी बनायी तो ये उनके प्रथम सक्रिय समर्पित सदस्य बने। साधकोंको कठिनतम नियम दिलाये गये, जिसमें उल्लेखनीय हैं भोजनमें तीन या पाँच वस्तुओंका प्रयोग (आटा, घी, नमक, दाल, दूध आदि), तीन या पाँच कपड़ोंका संग्रह, नित्य चौंसठ मालाका जप, गीतापाठ आदि। इन्होंने सत्य, सेवा, सत्संग और अदोष-दर्शन आदि नियमोंका भी व्रत लिया। कमेटीकी बैठक प्रति रविवारको श्रीभाईजीकी अध्यक्षतामें होती थी। नियम भंगका दण्ड उपवास था, पर इनका नाम प्रायः उस श्रेणीमें नहीं आता था।

इनका चित्त श्रीभाईजीमें बसा रहता था। ये प्रत्येक स्थानपर अदृष्टके रूपमें श्रीभाईजीको अपना रक्षक, सहायक और सूत्रधार मानते थे। बात सन् १९३४ की है। उन दिनों सत्संगके निमित्त श्रीभाईजीकी माताजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गयी हुई थीं। उनको वापस गोरखपुर पहुँचानेका दायित्व श्रीशुकदेवजीको सौंपा गया। वे ट्रेनसे गोरखपुर आ रहे थे। लखनऊ एवं गोरखपुरके बीच खलीलाबाद नामक एक स्टेशन पड़ता है, जो गोरखपुरसे लगभग बीस मील दूर है। श्रीशुकदेवजी गाड़ीके गोरखपुर पहुँचनेके बहुत पहले मानसिक संध्या-वंदन आदिसे निवृत्त हो गये। उनके मनमें श्रीभाईजीसे मिलनेकी तीव्र लालसा थी। ट्रेन खलीलाबाद स्टेशनपर अभी पहुँची नहीं थी, पर उत्कंठाके आवेगमें उन्होंने समझ लिया कि गोरखपुर स्टेशन आ गया है, अतः चलती गाड़ीका दरवाजा खोलकर नीचे उतरने लगे। संयोगसे दरवाजेसे लगा हुआ लोहेका डंडा उनके हाथमें आ गया। गाड़ी गतिमें थी, अतएव उन्हें झटका लगा और वे अचेत हो गये। ईश्वरकी कृपा, इस स्थितिमें भी उनके हाथसे वह डंडा छूटा नहीं। थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश आया तो उन्होंने अपनेको चलती गाड़ीसे झूलते हुए पाया। उन्होंने जान लिया कि अब प्राण गये! वे कालके गालका ग्रास बनने ही वाले थे कि उसी क्षण उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि श्रीभाईजीने सशरीर उपस्थित होकर उनका हाथ पकड़ लिया है और उनको खलीलाबादके प्लेटफार्मपर खड़ा कर दिया है। सच तो यह है कि श्रीभाईजी गोरखपुरमें थे, जो खलीलाबाद स्टेशनसे कई मील दूर है, पर यह दूरी तो हमारे-आपके लिये है, श्रीभाईजीके अन्तरंग भक्त श्रीशुकदेवजीके लिये नहीं। जीवन-रक्षाके इस अद्भुत प्रसंगने श्रीभाईजीके महान सामर्थ्यकी

एक झलक उनको दिखला दी। इस झलकसे श्रीभाईजीके श्रीचरणोंके प्रति उनके अन्तरमें कैसी आस्था, कैसी श्रद्धा, कैसी भक्तिका उद्रेक हो उठा, इसे तो एक मात्र श्रीशुकदेवजीका हृदय ही जानता है। श्रीशुकदेवजीके हृदयकी भावनाके प्रबल प्रवाहका स्वरूप सामने आते ही मुझे श्रीरामचरितमानसकी चौपाई याद आने लगती है कि सामर्थ्यके ज्ञानके अभावमें सही प्रतीति-प्रीति-भक्ति नहीं होती।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहीं भगति दिढाई। जिमि खगपति जल के चिकनाई॥

■

श्रीदुर्गाशंकरजी अग्रवाल

कुछ आदर्श उदाहरण

समाजमें बढ़ती हुई अनैतिकता-उच्छृंखलता-अनास्थासे किसीका मन बड़ा व्यथित था। टूटती हुई मर्यादाओं, बढ़ती हुई वासनाओं, कराहती हुई आस्थाओं, विखरती हुई मान्यताओंको देखकर उनका मन काँप उठा कि अपने हिन्दू देश भारतके ऋषियों-मुनियों द्वारा स्थापित वे महान आदर्श और वे महान चरित्र क्या केवल अब पुस्तकोंमें पढ़नेकी चीज रह जायेगी। एक पत्रमें आपबीती कुछ घटनाओंका वर्णन करते हुए उन्होंने अपना दर्द लिखकर श्रीभाईजीके पास गोरखपुर भेज दिया। श्रीभाईजीने पत्रका जो संक्षिप्त उत्तर भेजा, वह इस प्रकार है:—

प्रिय महोदय,

सादर हरिस्मरण। आपका कृपा पत्र मिला। अवश्य ही वर्तमान समयमें भी ऐसे बहुत सज्जन सभी क्षेत्रोंमें वर्तमान हैं, जो भारतीय संस्कृतिके परमोज्जवल प्रकाश रूप हैं, पर ऐसे सज्जन न तो अपना विज्ञापन करते हैं, न वे यह चाहते हैं कि उन्हें लोग जाने और मानें। करोड़ों मानवोंमें, पता नहीं, कितने ऐसे होंगे, जिनके चरित्र अत्यन्त पवित्र और आदर्श हैं। जिन क्षेत्रोंके लोगोंके सम्बन्धमें आपने पूछा, उन क्षेत्रोंमें भी ऐसे बहुतसे सज्जनोंसे मेरा काम पड़ा है और मैं उन्हें जानता हूँ, जो परम आदर्श चरित्र हैं।

साधुओंमें मैं ऐसे महात्माओंको जानता हूँ, जो सचमुच बड़े विरक्त और परम त्यागी सदाचारी हैं। उनमें कौन ब्रह्मनिष्ठ है, कौन परमात्माको प्राप्त है, यह तो मैं नहीं कह सकता, क्यों कि यह स्थिति तो स्वसंवेद्य है। एक महात्माको मैंने देखा है, जो बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान हैं, पर जिनमें विद्याका जरा भी अभिमान नहीं और जिनका अत्यन्त त्यागपूर्ण विरक्त जीवन है।

धनियोंमें भी ऐसे बहुतसे हैं। एक ऐसे सज्जन हैं, जो अपने लिये कंजूस हैं और दूसरोंके लिये बड़े उदार हैं। सदाचारी हैं, व्यसनरहित तथा अभिमान-शून्य हैं। अत्यन्त साधारण रहन-सहन रखते हैं। विनम्र हैं, भगवद्भक्त हैं। एक दूसरे धनी सदाचारी महापुरुष हैं, जिन्होंने

पैसा कमाया ही धर्म तथा जनताकी सेवाके लिये। उम्रभर सेवा करते रहे।

एक डिप्टी कलक्टर हैं, जो अनुचित अर्थ ग्रहण नहीं करते। अपने नियमित नौकरीके पैसोंसे परिवारका पालन करते हैं। एक दिन मेरे पूछनेपर, उस दिन महीनेके अन्तकी तीस तारीख थी, उन्होंने कहा— 'मेरे पास आज चार आने पैसे हैं। इस महीनेके वेतनके पैसे मिलेंगे तो काम चलेगा'। एक पोशाक है, जिसे बाहर जाते हैं, तब पहन लेते हैं। बड़े मितव्ययी हैं और अपनी इस स्थितिमें संतुष्ट हैं।

टैक्सटाइल विभागके एक उच्चअधिकारी थे। अब उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया है। बड़े-बड़े प्रलोभन आनेपर भी उन्होंने ऊपरका एक पैसा नहीं लिया। बड़ी सादगीसे जीवन बिताया। साइकिलसे आफिस आते जाते थे। आफिसके ऊपर-नीचेके अधिकारी उनसे उतने प्रसन्न नहीं रहते थे, क्यों कि वे उनको अपनी अनुचित आयमें बाधक समझते थे। बड़े निर्मल हृदय, विनम्र, सदाचारी तथा भक्त पुरुष हैं।

एक पुलिसके उच्च अधिकारी थे, जिन्होंने सारी उम्रमें कभी घूस नहीं ली, कभी मिथ्या मुकदमा नहीं बनाया। कमाईमेंसे गरीबोंकी सेवा करते और स्वयं बड़ी कठिनाईसे जीवन चलाते, पर बड़े प्रसन्न थे। उन्हें अपनी सादगी और इमानदारीका गौरव था।

एक नेता हैं, जो पहले कहीं किसी पंचायतके उच्च अधिकारी थे। अच्छे कुलके, इमानदार, अपनी धुनके पक्के, जनताकी सेवा तथा जनताको सुख पहुँचानेके लिये अथक परिश्रम करनेवाले, देश तथा जनताकी सेवामें अपना सारा समय, शक्ति, धन लगानेवाले, कुटुम्बसे लापरवाह, सेवा-सेवाकी धुनमें घरकी जमीन-मकान-जायदाद बेचकर काम चलानेवाले, पर मित्रों-बान्धवोंके द्वारा दिये जानेपर भी किसी भी हालतमें पैसा स्वीकार न करनेवाले अति फक्कड़ आदमी हैं। मैं उनकी कुटुम्बकी लापरवाही तथा जमीन-जायदाद बेचनेके कार्यका समर्थन नहीं करता, पर उनकी धुन देखकर तो सभी चकित हो जाते हैं। अभी-अभी उन्हें कई लाख रुपये किसी वोटके सौदेमें मिल रहे थे, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किये और नयी सरकार बननेतक दबाव पड़नेके डरसे एकान्त सेवन करते रहे। संग्रह करने योग्य मुनष्य है।

मिनिस्टरोंमें भी ऐसे बहुतसे हो चुके हैं, अब भी होंगे, जिन्होंने ऊँचे-से-ऊँचे पदोंपर आसीन होकर भी अपने घरकी ओर नहीं देखा। फकीर ही बने रहे। नया मकान बनाना तो दूर रहा, पुराने घरकी मरम्मत भी नहीं करवाई। भाड़ेका घर भी नहीं बदला।

इसी प्रकार सभी क्षेत्रोंमें परम पवित्र आचरणों वाले सज्जन हैं। स्त्री समाजमें तो पुरुषोंसे कहीं अधिक आदर्श चरित्रवाली त्यागमूर्ति देवियाँ हैं। इन सभीके चरणोंमें मैं सभक्ति नमस्कार करता हूँ। दुःख तो इस बातका है कि नवीन निर्माणमें ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियोंकी संख्या उत्तरोत्तर घट रही है, जो देशके लिये भयानक दुर्भाग्यकी बात है।

शेष भगवत्कृपा।

आपका
हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी

प्रणम्यका प्रणाम

पूज्य श्रीभाईजीके सर्वप्रथम दर्शन मुझे तब हुए, जब मेरी उम्र मात्र सात-आठ वर्षकी थी। उन दिनों 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्दे, श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयी, श्रीदेवधरजी शर्मा और मेरे पिताजी श्रीशान्तनुबिहारीजी द्विवेदी काम करते थे। श्रीभाईजीके समीप जानेपर चरण छूकर प्रणाम करना मुझे सिखलाया गया था। तदनुसार उनके चरणोंतक पहुँचकर जैसे ही मैंने प्रणाम किया, श्रीभाईजीने मुझे अपने पास खींचकर बैठा लिया और अपने अमूल्य समयमेंसे मुझे भी कुछ क्षण देकर बहुत लाड़-प्यार पूर्वक घर-बाहरकी बातें मुझसे करने लगे। फिर तो मैं कई दिनों तक उनके घर ही रहा। वहाँके स्नेहकी स्मृतियाँ आज भी मानस-पटलपर एक-एक कर अंकित हो रही हैं।

सन् १९४२ में 'महाभारतांक' का काम पूरा होते-होते मेरे पिताजीने संन्यास ले लिया। उस समय मैं श्रीभाईजीकी पूर्वज-भूमि रतनगढ़के निकट चूरूके 'ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम'में अध्ययन कर रहा था। जब मुझे संन्यासकी सूचना मिली तो आश्रममें मैं कई दिनोंतक दुःखी रहा और रोया भी। उस समय श्रीभाईजीने मुझे रतनगढ़ बुलवा लिया और विश्वास, आश्वासन और स्नेहकी वह वर्षा की, जिसे आज भी यादकर हृदय गद्‌गद हो उठता है।

सन् १९४६ में ऋषिकुलका स्नातक होकर अपने गाँव महराई आ गया। घर आनेके पश्चात् विवाह पर्यन्त श्रीभाईजीसे मैं मिल न सका। विवाहके अवसरपर ही श्रीभाईजीका एक कार्ड आया, जिसके आरम्भमें लिखा था 'प्रिय विश्वम्भर, शुभाशीष'। उसी कार्डके अन्तमें यह भी लिखा था 'तुम्हारा, हनुमान प्रसाद पोद्दार'।

यह कार्ड मेरे एक अभिभावकके हाथ लग गया। उस पत्रमें लिखित 'आशीष' और 'तुम्हारा' जैसे शब्दोंपर उन्होंने बड़ी आपत्ति उठायी और वे आग-बबूला हो गये। वे लगे वहाँ अपनी भड़ास निकालने— देखा, यह देशके बड़े विद्वान 'कल्याण'के सम्पादकका पत्र है! इतना तो उन्हें ध्यान होना ही चाहिये कि पत्र लिख रहे हैं एक ब्राह्मणको।

मैं श्रीभाईजीसे अपने सम्बन्ध एवं भावकी बात उन्हें समझानेमें विफल रहा। वे अन्ततक झल्लाते ही रहे।

संयोगसे उन्हीं अभिभावक महोदयके साथ कुछ दिनों बाद मैं गोरखपुर गया और श्रीभाईजीसे मिला। अपने पहले संस्कारके अनुसार ही मैंने उन्हें प्रणाम किया। बस, प्रणाम करते-करते श्रीभाईजीने मेरा हाथ पकड़ लिया। फिर उन्होंने स्वयं अपने हाथ जोड़ लिये और वे बोले— अच्छा, विश्वम्भर, आ गये। अब तुम छोटे बच्चे नहीं, बड़े हो गये हो। ब्राह्मण हो, पूज्य हो। तुम पैर छूकर प्रणाम करो, यह अब नहीं चलेगा। अब तो तुम्हें प्रणाम करना मेरा ही कर्तव्य है। प्रसन्न हो न? घरमें सब लोग स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं न?

यह सब कहते और पूछते हुए श्रीभाईजीने प्रणामके गौरवमें एक छोटा-सा प्रवचन ही दे

डाला। मुझे सबसे अधिक संतोष यह देखकर हो रहा था कि श्रीभाईजीसे अपने सम्बन्ध और भावकी जो बात मैं चाह करके भी अपने अभिभावकको तब नहीं समझा पाया था, अब उसी बातको श्रीभाईजीके वर्तमान उद्‌गारोंने एवं उनके प्रत्यक्ष व्यवहारने सहज रूपमें समझा दिया।

■

श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास

नत-मस्तक हूँ

सन् १९६३ की बात है। तब मैं लखनऊसे प्रकाशित होनेवाली 'ज्ञान भारती' पत्रिकाका सम्पादक था। उस दशकके आरम्भमें चीन और भारतके मध्य जो संघर्ष हुआ था, उससे दोनों देशोंके पारस्परिक सम्बन्धमें तनाव आ गया था और अपने देशका वातावरण क्षुब्ध था। उस समय आवश्यकता थी अपने देशके नवयुवकोंमें देशभक्ति एवं देशरक्षाकी भावना प्रस्फुटित एवं परिपुष्ट करनेकी। इस चिन्तनसे प्रभावित होकर 'ज्ञान भारती' पत्रिकाका 'देश-रक्षांक' विशेषांक निकालनेका विचार होने लगा, जिससे त्याग और बलिदानकी गाथाएँ देशवासियोंतक पहुँच सके। 'देश-रक्षांक' विशेषांकके प्रकाशनका निश्चय होते ही सभी क्षेत्रोंकी प्रमुख विभूतियोंको पत्र लिखकर अनुरोध किया गया कि वे अपने विचार या तद्विषयक कुछ सच्ची घटनाएँ लिखकर भेजें, जिससे विशेषांक सुन्दर रूपमें प्रकाशित हो सके।

मैंने पत्र श्रीभाईजीको भी लिखा। किसी सार्वजनिक सभामें उनको देखने-सुननेका अवसर मुझे भले ही मिला हो, पर उनसे मेरा कोई व्यक्तिगत परिचय नहीं था। गीताप्रेस और 'कल्याण' पत्रिकाके कर्णधार होनेके कारण श्रीभाईजी अध्यात्म एवं सम्पादन-क्षेत्रकी एक अति गण्यमान विभूति थे, अतः उनसे निवेदन करना आवश्यक और उचित था। मैंने निवेदन किया अवश्य, पर मात्र कर्तव्यवश, क्यों कि सुना था, वे अन्य पत्र-पत्रिकाओंके लिये लेख नहीं भेजते। साथ ही उनकी चतुर्दिक् ख्याति और उनकी अत्यधिक व्यस्तताकी बातोंको मैंने खूब सुन रखा था, अतः मुझे स्वाभाविक ही आशा नहीं थी कि उनके पाससे कोई लिफाफा मेरे पास आयेगा, परंतु एक दिन अचानक उनसे उत्तर प्राप्त करके मेरे आश्चर्य और आनन्दका ठिकाना न रहा। उनका जीवन अत्यधिक व्यस्त है, इसके बाद भी 'ज्ञान भारती' जैसी मध्यम श्रेणीकी पत्रिका और मुझ जैसे साधारण सम्पादकके लिये उनके दिलमें जगह है, इससे मैं बड़ा प्रभावित हुआ।

उन्होंने ज्ञान-भारतीके लिये एक लेख भेजा था और लेखके साथ एक पत्र था मेरे नाम। लेखके भेजनेसे मैं प्रभावित तो था ही, इससे भी अधिक प्रभावित था उनके पत्रसे, जिसकी पंक्ति-पंक्तिमें उनके अन्तरका दैन्य भरा हुआ था और उसी दैन्यमें उनके अन्तःकरणकी उदारताका सागर हिलोरे ले रहा था। मैं उनसे छोटा हूँ, मात्र कहनेके लिये नहीं, सचमुच ही। इसके बाद भी मुझको अत्यन्त सम्मान देनेके लिये 'परम आदरणीय' शब्दका प्रयोग करते हुए उन्होंने पत्रका प्रारम्भ किया था। इस सम्मानका न तो मैं पात्र था और न मुझमें योग्यता थी, पर उन्होंने वैसा सम्मान दिया। पत्रमें जो उन्होंने लिखा था, उसका सारांश यह था कि यद्यपि स्वास्थ्य ठीक नहीं है, पर आपकी आज्ञा थी, अतः कर्तव्य-पालनके रूपमें कुछ लिखकर भेज

रहा हूँ। साथ ही यह भी लिखा था कि यदि लेख आपको पसन्द न आये या स्तरका न हो तो निःसंकोच वापस कर दें। अति विनम्रतामें छिपी हुई उनकी महानता मेरे हृदयको बहुत भीतरसे छू गयी और पत्रका अन्त तो बड़ा हृदय-स्पर्शी था। उसे देखकर मैं उनके दैन्यका वन्दन करने लगा। उन्होंने अपने लिये लिखा था 'आपका सेवक'। इन दो शब्दोंको पढ़कर मेरा मस्तक उनके प्रति झुक गया। चतुर्दिक् प्रतिष्ठा होकर भी ऐसा दैन्य-भाव था और ऐसी असाधारण विनम्रता थी उनमें। इस दैन्यके प्रति मैं तब भी नत मस्तक था और आज भी हूँ और सदैव रहूँगा। ■

श्रीगोपीनाथजी तिवारी (भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, गोरखपुर विश्वविद्यालय)

सिर झुका कर कहते हैं–

गोरखपुर दो सम्बन्धोंसे लोकविश्रुत रहा है, गोरखनाथ और गीताप्रेस– 'कल्याण'से। केरलमें यात्रा करते हुए मुझे एक मद्रासी सज्जनने पूछा– आप कहाँसे आये हैं?

मैंने कहा– गोरखपुरसे।

मुँह ताकते हुए वे बोले– गोरखपुर, कौन गोरखपुर?

मैंने कहा– गोरखनाथकी सिद्धभूमि, पूर्वोत्तर रेलवेका मुख्यकेन्द्र।

वे और अधिक स्तम्भित हो पूछने लगे– कौन गोरखपर, ? समझा नहीं मैं।

मैंने कहा– गीताप्रेसवाला गोरखपुर, जहाँसे 'कल्याण' निकलता है।

प्रसन्न वदन वे बोल पड़े– अच्छा, गीताप्रेसवाला गोरखपुर।

यह वार्तालाप अंग्रेजीमें हुआ, क्योंकि वे हिन्दी बिल्कुल नहीं समझते थे। गीताप्रेस और 'कल्याण'की पृष्ठभूमिमें एक स्तम्भ था, यशस्वी प्रकाश-स्तम्भ, जिसका नाम था– 'श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार'।

गीतावाटिका इसी कार्यरत कुसुमसे सुगन्धित थी। गोरखपुरके सहायता-कार्योंमें भी भाईजीका हाथ सदा आगे बढ़ा है। गोरखपुरकी बाढ़ एक विभीषिका बनी रहती थी और भाईजी सहायता-कार्यमें सदा तत्पर रहते थे। कुष्ठाश्रम भी उनकी सहायता-दृष्टिमें रहा। मेरा भाईजीसे २५ वर्षोंसे निकटका सम्बन्ध रहा है। मैंने सैकड़ों छात्रोंको उनके पास सहायतार्थ भेजा और मुझे एक भी ऐसा समय स्मरण नहीं है, जब कोई छात्र रिक्तहस्त लौटा हो। उन्होंने किसीको मासिक छात्रवृत्ति दी, किसीको एक मुश्त धनराशि। एक छात्र मेरे पास दुःखी आया। उसपर विश्वविद्यालयका परीक्षा-शुल्कसहित पौने दो सौ रुपया देय था। मैंने भाईजीको पत्र लिखा। वह छात्र हँसता हुआ लौटा और परीक्षामें बैठा। ऐसा सैकड़ों बार हुआ है।

सब कुछ करते हुए भी भाईजी नामसे दूर भागते थे। मैंने उन्हें विश्वविद्यालयमें बुलाया। उनके भाषण भी हुए, किन्तु वे कभी भी सभापति न बने। पहले ही कह देते थे– मैं आऊँगा, किन्तु सभापति न बनूँगा।

महाप्रयाणसे दो मास पूर्वकी ऐसी ही एक अविस्मरणीय स्मृति है। मैं चाहता था कि एम. ए. हिन्दीमें सर्वोच्च अंक प्राप्त करनेवालेको स्वर्णपदक दिया जाय। मैंने भाईजीसे इसकी चर्चा की। वे तुरन्त बोले— हाँ, दो सहस्त्र रुपये आपके पास पहुँच जायँगे।

मैंने कहा— भाईजी, इस स्वर्णपदकका नाम होगा 'हनुमानप्रसाद पोद्दार स्वर्णपदक'।

उन्होंने कहा— यह नहीं हो सकता। कोई और नाम रखिये।

मुझे आधा घंटा भाईजीसे पर्याप्त वाद-विवाद एवं संघर्ष करना पड़ा, तब बड़ी कठिनाईसे वे राजी हुए और बोले— तिवारीजी! आप तो सब कुछ जानते हैं, तब क्यों इसपर आज अड़कर बैठ गये हैं?

वास्तवमें भाईजी 'ऋषि' थे और गीतावाटिकाके वृक्ष सिर झुकाकर कहते हैं— हाँ, हम उनके ही लिये झुकते हैं। ■

श्रीशिवबालकजी त्रिपाठी

[१] श्रमिक नेताके उद्गार

एकबार गीताप्रेसमें श्रमिकोंने हड़ताल कर दी। गीताप्रेसके श्रमिक नेताओंकी ऐसी कल्पना थी कि श्रीशिब्बनलालजीके सहयोगसे यह हड़ताल और भी जोर पकड़ लेगी। श्रीशिब्बनलालजी पूर्वाञ्चलके श्रमिक वर्गके नेता थे और वे शहरमें थे नहीं। कहीं बाहर गये हुए थे। उनके बाहरसे आनेपर श्रमिक नेताओंने उनसे नेतृत्वके लिये अनुरोध किया। श्रीशिब्बनलालजीने स्पष्ट और जोरदार शब्दोंमें कहा— मैं इस हड़तालमें सहयोग नहीं दूँगा। मैं राजनैतिक पार्टीसे इस्तीफा दे सकता हूँ किन्तु श्रीपोद्दारजीके खिलाफ एक शब्द नहीं बोल सकता। मुझे उनकी नेक-नीयतीपर पूर्ण विश्वास है।

[२] समयकी पाबन्दी

११ फरवरी १९६८ के दिन भारतीय जन-संघके अध्यक्ष श्रीदीनदयालजी उपाध्यायके निधनका समाचार रेडियो द्वारा प्रसारित किया गया। श्रीउपाध्यायजीका निधन मुगलसराय स्टेशनके पास हुआ। शव पुलिसके पास है और मृत्युका कारण अज्ञात है। इस समाचारको पाते ही श्रीभाईजीको बड़ी मार्मिक पीड़ा हुई।

शामको साढ़े पाँच बजे गोरखपुरके टाउन हालमें शोक-सभा थी। जनसंघके स्थानीय कार्यकर्ता श्रीमलहोत्राजीने श्रीभाईजीसे भी आनेके लिये अनुरोध किया। श्रीभाईजीने उस अनुरोधको तुरन्त स्वीकार कर लिया और कहा— मुझको तो आना ही चाहिये। वे तो मेरे बड़े आत्मीय स्वजन थे। हम दोनोंका बड़ा स्नेह था।

दोपहरमें मृत्यु हुई थी और अपराह्नकालमें यह समाचार प्रसारित किया गया था। समाचार मिलते ही इस शोक-सभाका आयोजन कर लिया गया था। श्रीभाईजी घरसे पाँच बजे चल दिये।

कारमें समीप बैठे हुए भाई श्रीबंकाजीने श्रीभाईजीसे कहा– बाबूजी ! आप जल्दी चल रहे हैं।

श्रीभाईजी– हमलोग जल्दी कैसे चल रहे हैं? श्रीमलहोत्राजीने कहा था कि साढ़े पाँच बजेसे सभा है।

श्रीबंकाजी– वह तो ठीक है, पर सभाकी कार्यवाही साढ़े पाँच बजे आरम्भ नहीं हो पायेगी। अभी तो अच्छी प्रकारसे प्रचार भी नहीं हो पाया है।

श्रीभाईजीने कहा– इससे क्या? अपनेको तो समयपर पहुँचना है।

कुछ देर रुककर श्रीभाईजीने कहा– यही तो खराबी है। सभी यदि यह सोचने लगें कि सभाकी कार्यवाही साढ़े पाँच बजे आरम्भ नहीं होगी, अतः देरसे चलना चाहिये, फिर तो अवश्य ही देर होगी। सोचना यह चाहिये कि कार्यवाही आरम्भ हो या न हो, अपनेको ठीक समयपर पहुँच जाना है।

श्रीभाईजी वहाँपर समयसे पहुँच गये और सचमुच शोक-सभाकी कार्यवाही साढ़े पाँच बजे आरम्भ हो गयी। निश्चित समयपर पहुँचनेका निश्चय रहनेसे श्रीभाईजी कुछ मिनट पहले ही वहाँ पहुँच गये थे। ■

श्रीहरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी

कठिनाई हल हो गयी

गरीबों और दुःखियोंकी वेदनासे पोद्दारजी द्रवित हो जाते थे। सन् १९५५ या ५६ की बात है। उन दिनों मैं गोरखपुरमें ही वकालत कर रहा था। एक डकैतीका मुकदमा चल रहा था, जिसमें कई अभियुक्त थे, जो हवालातमें बंद थे। एक अभियुक्तके सम्बन्धमें पोद्दारजीका विश्वास था कि वह निरपराध है। वे मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उसके सम्बन्धमें कुछ छानबीन कर लूँ।

श्रीभाईजीके इस कथनसे मुझे विश्वास हो गया कि कोई खास बात है। मैंने जाँच-पड़ताल करायी तो पता चला कि वह व्यक्ति निर्दोष था और वह मुक्त कर दिया गया। उसे इस बातका पता भी न था कि उसकी मुक्तिमें पोद्दारजीका हाथ था।

उन्हीं दिनोंकी एक दूसरी घटना याद आती है। पोद्दारजीके निमन्त्रणपर भारतके प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद गीताप्रेसके मुख्य-द्वारके उद्घाटन और चित्र-मन्दिरके अनावरणके लिये गोरखपुर पधारे थे। बड़ी धूम-धाम थी और उनके दर्शनके लिये हजारोंकी संख्यामें लोग इकट्ठे हो रहे थे। गीताप्रेस शहरके मध्यमें स्थित है। भीड़-भाड़के कारण जिला-अधिकारियोंने सुरक्षाके कुछ प्रश्न उपस्थित किये, किन्तु श्रीराजेन्द्रबाबूके गीताप्रेसके प्रति प्रेम और पोद्दारजीके मर्मस्पर्शी अनुरोधने सभी कठिनाइयोंको हल कर लिया और उद्घाटन एवं अनावरणका कार्यक्रम बड़े ही उल्लासपूर्ण वातावरणमें सम्पन्न हुआ। ■

डा. श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज

एक गृहस्थ संत

जहाँतक मुझे स्मरण है यह बात सन् १९२८ ई. की है। मेरे भगवद्भक्तिपरक दो छन्द 'कल्याण'में प्रकाशित हुए थे। सम्पादक महोदयने मुझे उस अंककी एक प्रति भेजी थी और तभीसे मेरा उनके साथ लेखक-सम्पादकका सम्बन्ध स्थापित हो गया।

एक बार उन्होंने अपने एक मित्रके घर विवाहोत्सवमें निमन्त्रित एक विद्वान्का दक्षिणा-प्रदानद्वारा सम्मान करना चाहा। दक्षिणाको अस्वीकार करते हुए निमन्त्रित व्यक्तिने यह कहा— मैं तो केवल उत्सव-दर्शनार्थ यहाँ आया था, अतः दक्षिणा नहीं लूँगा।

इसपर विनयावनत श्रीपोद्दारजीने उस दक्षिणाद्रव्यको उनके हाथमें न देकर चरणोंमें समर्पित कर दिया। इस भावमयी दक्षिणाका वे विद्वान् प्रत्याख्यान न कर सके। यह घटना नयी दिल्लीकी है।

ऐसा ही एक प्रसंग स्वर्गाश्रमका है, जहाँ श्रीपोद्दारजीने एक विद्वान्के चरणोंका स्पर्श करना चाहा। विद्वान् व्यक्ति वयमें न्यून थे, अतएव उन्होंने संकोचवश श्रीपोद्दारजीके द्वारा अपने चरणोंके स्पर्शका विरोध किया। इसपर श्रीपोद्दारजीका संक्षिप्त उत्तर था— किन्तु श्रीमान्! आपके चरणोंको स्पर्श करनेका तो मेरा अधिकार है। इससे आप मुझे वञ्चित न करें।

श्रीपोद्दारजी एक वदान्य व्यक्ति थे। दिल्लीके एक सज्जनको, जो परिस्थितवश संकटापन्न हो गये थे, अपनी पुत्रीके विवाहके लिये धनकी आवश्यकता आ पड़ी। उन्होंने एक मित्रके माध्यमसे श्रीपोद्दारजीसे आर्थिक सहायताकी याचना की। परिणामतः श्रीपोद्दारजीने उन सज्जनके घरपर चार अंकोंवाली अपेक्षित धनराशि भिजवा दी। उनकी विपुल आर्थिक सहायताके द्वारा एक अन्य कन्याका भी विवाह सुविधापूर्वक सम्पन्न हो जानेकी बात मुझे विदित है। धन्य है ऐसी उदारता। ■

बहिन बी. बेगम मौदहा

फरिश्ता-सिफत इन्सान

मुझे जब इस बुजुर्ग और फरिश्ता-सिफत इन्सान माननीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अपने बीचसे उठ जानेकी खबर मिली तो मैं सोचने लगी कि क्या ऐसी शखसियत भी फना हो सकती है। मेरा सम्पर्क आदरणीय पोद्दारजीसे मेरे पति 'सगीर साहब' की मार्फत सन् १९५२ से रहा है। जिस समय मेरे पति चित्रकूटमें राजकीय ड्यूटीपर थे, उन्होंने पोद्दारजीकी इतनी अधिक तारीफ व बड़ाई की कि मैं चकित रह गयी और फिर मुझे मिलाने ले गये। जब मैंने उन्हें अदबसे सलाम किया और मेरे पतिने मेरा परिचय दिया तो पोद्दारजीने फरमाया— खुश रहो, बेटी! लोगोंके दुःख-सुखमें शरीक रहोगी तो अमर रहोगी।

और भी बातें हुईं। तबसे वे मुझे बराबर 'कल्याण' भेजते रहे। कई बार उन्होंने लिखा कि तुमलोग कुछ 'कल्याण'में लिखो।

१९६१ ई. में जब मैं अपने पतिके साथ श्रीराहुलजीको उनकी बीमारीमें कुछ सामग्री देने दार्जिलिंग गयीं, तब उनके सामने पोद्दारजीका जिक्र मेरे पतिने छेड़ दिया। उसपर श्रीराहुलजीने कहा था– हनुमानप्रसादजी पोद्दार जो सेवा-कार्य कर रहे हैं, उससे वे अमर रहेंगे। उनकी सेवाएँ लोगोंको अवश्य याद रहेगी। ■

श्रीसाँवरमलजी जोशी

प्रार्थना-निष्ठा

प्रभु सर्वसमर्थ हैं, प्रभु सर्वसुहृद हैं, उनका प्रत्येक विधान जीवमात्रके लिये अशेष मंगलकारी होता है, इस सिद्धान्तपर बाबूजीकी अद्‌भुत निष्ठा थी। वे अपने प्रवचनोंमें कहा करते थे– *विधाता और विधान ये दो नहीं हैं, अतएव विधाताके प्रत्येक विधानमें मंगल-ही-मंगल भरा है। इतना होनेपर भी जो विधान प्रतिकूल प्रतीत हो, उसके निवारणके लिये सत्प्रयत्न करनेके साथ-साथ मन-ही-मन भगवानसे प्रार्थना करनी चाहिये। भगवानकी प्रार्थनामें अमोघ एवं अमित शक्ति है। भगवत्प्रार्थनासे कठिन-से-कठिन कार्य सहजमें सम्पन्न हो जाते हैं, परंतु भगवान सर्वज्ञ एवं सर्वसुहृद हैं, अतः वे उसी प्रार्थनाको पूर्ण करते हैं, जिसके परिणाममें हमारा परम मंगल होता है। हमारी कोई प्रार्थना पूर्ण न हो तो निश्चय समझें कि उसकी अपूर्णता ही मंगलकारिणी है, किन्तु प्रार्थना होनी चाहिये सच्चे मनसे और अचल विश्वासके साथ। प्रार्थनाके लिये किसी विशेष प्रकारके शब्दोंकी आवश्यकता नहीं, भगवान सब भाषाएँ समझते हैं। प्रार्थनामें चाहिये हृदयकी भाषा।*

बात सन् १९१८ की है। देशकी स्वतन्त्रताके लिये क्रान्तिकारी गतिविधियोंको अपनानेके कारण बाबूजी बंगालके शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द कर दिये गये और नजरबन्दीकी अवधिको पूर्ण कर बाबूजी मुक्त हुए थे। बंगाल सरकारने बंगालसे उनके निष्कासनका आदेश भी जारी कर दिया था, अतएव बाबूजी अपने पैतृक स्थान रतनगढ़ चले आये थे।

विधिका विधान! अचानक वहाँ प्लेगका प्रकोप हो गया। परिवार-के-परिवार नियतिके क्रूर हास्यमें विलीन होने लगे। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति सबको दिखा देना चाहती थी कि जीवन कितना क्षणभंगुर है।

शिमलापालके जीवनमें भगवानकी मंगलमयता तथा भगवत्प्रार्थनापर बाबूजीकी आस्था बहुत दृढ़ हो गयी थी। साथ ही लोकसेवाकी भावना भी परिपुष्ट हुई थी। सब रूपोंमें अपने प्रभु ही हैं, इससे प्राणिमात्रकी सेवा, अध्यात्म-साधनाका ही प्रतिरूप था बाबूजीके लिये। प्राणि-सेवामें भी आर्तनारायण, अर्थात् रोग-कष्टसे पीड़ित व्यक्तियोंकी सेवाके लिये विशेष तत्पर रहते थे वे। प्लेगके प्रकोपसे सेवाका उन्मुक्त क्षेत्र सामने था। बाबूजी इस अवसरपर कब चूकनेवाले थे! वे रोगियोंकी सेवामें जुट गये। घर-घर रोगियोंकी सँभाल करना, उनके उपचारकी व्यवस्था करना तथा सबके मनोबलको बनाये रखना, यही दिन-रातका उनका कार्यक्रम था।

प्लेगका रोग भीषण रूपसे संक्रामक होता है, अतएव बाबूजीके कतिपय हितचिन्तकोंने उन्हें यह सलाह दी– आपको कुछ समयके लिये यह स्थान छोड़ देना चाहिये।

बाबूजी सबको हँसते हुए यही उत्तर देते थे– यदि साँस समाप्त हो गयी होगी तो कहींपर भी रहूँगा, मृत्यु निश्चित है और यदि जीवन शेष होगा तो यहाँ भी कुछ नहीं हो सकता। फिर इस समय तो मुझे प्रभुने सेवाका अवसर दिया है, इसे क्यों छोड़ूँ?

बाबूजीकी निष्ठापूर्ण प्रभु-अर्चनाके रूपमें होनेवाली सेवाका अद्भुत प्रभाव भी परिलक्षित हुआ। अनेकों निराश व्यक्तियोंने स्वास्थ्य लाभ किया। एक घटना नीचे दी जा रही है।

एक अत्यन्त साधारण स्थितिका जाट-परिवार जीवनकी जटिलताओंको सहते हुए वहाँ निवास कर रहा था। परिवार बड़ा था, आय कम थी। अचानक इस परिवारके सबसे बड़े नवविवाहित पुत्रपर प्लेगका प्रकोप हुआ। यथासम्भव सभी प्रकारके इलाज करवाये गये, पर दशा बिगड़ती ही चली गयी। सबसे बड़े पुत्रको अपनी आँखोंके सामने जाता देख, निःसहाय जाट रोता-कलपता बाबूजीके पास पहुँचा। श्रद्धाकी गरिमा, याचनाकी सीमा, विश्वासकी गुरुताके साथ जाटने बाबूजीके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया। उसकी करुण-गाथा सुनकर परदुःखकातर बाबूजी सहज ही उसके साथ चल दिये दुःखमें उसका हिस्सा बँटानेके लिये। घर पहुँचनेपर बालककी स्थिति देखकर बाबूजीके मुखमण्डलपर भी गम्भीर चिन्ताकी रेखाएँ उभर आयीं। चुनी हुई उत्तम-से-उत्तम औषधि निरर्थक साबित हो रही थी। लगता था कि बालक अब कुछ ही घंटोंका मेहमान है। बाह्य चेतना प्रायः लुप्त हो चुकी थी। मुखपर किंचित् विकृति भी आ गयी थी। नव-विवाहिता वधू लाज-शर्म छोड़कर सामने आयी और फटते हृदय तथा अजस्र अश्रुधाराके साथ वह बाबूजीके चरणोंपर मस्तक टेककर बिलख उठी। भाषासे शून्य, भावनासे पूर्ण, वेदनाकी मूर्ति वह कुछ कह न सकी। कहनेकी आवश्यकता भी नहीं थी। बाबूजीके नेत्र भी भर आये।

परिवारके सदस्योंको समझानेका प्रयास करते हुए बाबूजीने कहा– भगवानपर विश्वास रखो। उनकी कृपाका अवलम्बन लेकर बालकको गंगाजल देना आरम्भ कर दो। औषधि सर्वथा बंद कर देनी चाहिये। बालकके समीप सुमधुर स्वरमें भगवन्नामका गान आरम्भ कर दो। भगवानकी कृपासे सब कुछ सम्भव है।

इतना कहकर स्वयं बाबूजी वहाँ बैठ गये। सुमधुर स्वरमें उन्होंने नामध्वनि आरम्भ कर दी। गंगाजल भी मँगवाया गया। बाबूजीने स्वयं अपने हाथोंसे उसे गंगाजल दिया।

कुछ देरतक बैठनेके बाद बाबूजी जाने लगे। जाते-जाते उन्होंने पुनः कहा– भगवानके सौहार्दपर विश्वास करके नाम-ध्वनि सुनाते रहो। बीच-बीचमें बालक जब भी पानी माँगे, उसे गंगाजल ही देना। भगवानकी कृपामें अद्भुत शक्ति है।

बाबूजी घर लौट आये। भगवानकी अपार कृपासे बालककी स्थिति सुधरने लगी। कुछ ही घंटों बाद बालककी चेतना लौट आयी। वह सबको पहचानने लगा। अब उसके जीवनकी आशा हो गयी। उपचारके साथ प्रार्थना चलती रही। बाबूजी बराबर उसकी सँभाल करते रहे। कुछ दिनोंमें वह निरोग हो गया।

बालक जब चलने-फिरने योग्य हो गया, तब जाट अपने पूरे परिवारसहित बाबूजीके

निवासस्थानपर पहुँचा। प्रत्येकका रोम-रोम पुलकित था, प्रसन्नतामें सारे-के-सारे डूबे हुए थे। कृतज्ञताके शब्द तो उनके पास थे नहीं, वह साधारण व्यक्ति सुन्दर शब्द-रचना कहाँसे लाता? हाँ, आनन्दमें अश्रु बहाते हुए जाटने बाबूजीके चरण पकड़ लिये। उनकी प्रसन्नताको देख बाबूजीका हृदय प्रफुल्लित था। प्यारभरे आतिथ्यके बाद बाबूजीने कहा— मुझमें कुछ भी नहीं है। यह सब तो प्रभुकी कृपा है। आपलोगोंकी प्रार्थनामें सच्चाई थी और प्रभु तो करुणा-वरुणालय हैं ही! उनपर निरन्तर विश्वास बढ़ाते रहिये और मुझे भी ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरे हृदयमें भी उनके प्रति प्रेम दृढ़तर होता चला जाय। मैं तो किसी योग्य हूँ ही नहीं।

जाट परिवार हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करके चला गया, पर परिवारका प्रत्येक सदस्य ले गया अपने साथ एक ऐसी अनुपम निधि, भगवत्प्रार्थनापर विश्वास, जिससे भवरोगका भी सहज रूपमें ही शमन हो सकता है। ■

श्रीइन्द्रचन्दजी थरड

श्रीमाधवजीका परिचय

मैं एक बहुत पुरानी बात कह रहा हूँ, जो मेरे सामने घटित हुई। प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९३७ के दिसम्बर मासमें चूरू स्थित ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रमका वार्षिकोत्सव मनाया जाने वाला था। इसके लिये आवश्यक तैयारी शुरू हो गयी थी। वार्षिकोत्सवके साथ-साथ ऋषिकुलमें पूज्य श्रीसेठजी, पूज्य श्रीभाईजी, पूज्य श्रीबाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) तथा अन्य संतों-विद्वानोंके प्रवचन सत्संगकी दृष्टिसे हुआ करते थे। इन दिनों श्रीबाबा श्रीसेठजीके साथ रहा करते थे और श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके लिखनेका काम चल रहा था। तबतक श्रीबाबाने मौन व्रत नहीं लिया था। वार्षिकोत्सवके समय जो सत्संग होता था, उसका लाभ उठानेके लिये दूर-दूरसे जैसे नापासर, रतनगढ़, बीकानेर, दिल्ली, जयपुर आदि स्थानोंसे भगवत्प्रेमी लोग आ जाया करते थे। उत्सवकी अवधिमें प्रत्येक दिन आठ-दस घंटे सत्संग चलता था। सच पूछा जाय तो यह वार्षिकोत्सव नहीं, वस्तुतः सत्संगोत्सव था।

श्रीभाईजी उत्सवके मुख्य दिवससे एक दिन पहले आया करते थे और उनके साथ उनके सम्पादकीय विभागके कई विद्वान लोग भी आया करते थे। तब तो उस सत्संगमें आनन्दकी बाढ़ आ जाया करती थी। वार्षिकोत्सवकी सत्संग-सभामें जो व्यक्ति प्रवचन देनेके लिये खड़े होते, प्रवचनके पूर्व पूज्य श्रीगोस्वामीजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) वक्ताका संक्षिप्त परिचय दिया करते थे। परिचयके बाद उनका भाषण हुआ करता था। जब पं. श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' भाषण देनेके लिये मंचपर आये तो उनका परिचय देनेके लिये श्रीगोस्वामीजी उठने लगे। उसी समय श्रीमाधवजीने उनसे बैठे रहनेका अनुरोध करते हुए निवेदन किया— आप उठनेका कष्ट न करें। मेरा परिचय मैं स्वयं ही दे लूँगा।

यह सुनकर श्रीगोस्वामीजी महाराज अपने स्थानपर बैठ गये। माधवजीने भाषणके पूर्व अपना परिचय दिया— मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका एक स्नातक हूँ। गीताप्रेसका एक कर्मचारी हूँ एवं हूँ श्रीभाईजीका एक अनुचर।

इस प्रकार अपना परिचय देकर उन्होंने अपना भाषण आरम्भ कर दिया। समयसे अपना भाषण समाप्त करके जब वे अपने आसनपर विराजमान हो गये, तब तुरन्त श्रीभाईजी अपने आसनसे उठे एवं मंचपर आकर कहने लगे– अभी मेरे मित्र श्रीमाधवजीने अपना परिचय दिया कि मैं भाईजीका अनुचर हूँ। यह उन्होंने अपना बिल्कुल गलत परिचय दिया है। ये सभी लोग भाईजीके प्राण हैं। इनके बिना आज भाईजीका उतना ही मूल्य है, जितना कि एक प्राण-विहीन शवका। 'कल्याण' पत्रिका एवं पुस्तकोंके सम्पादनका सारा कार्य ये ही लोग करते हैं। गीताप्रेससे प्रकाशित होने वाले साहित्यके सम्पादनका श्रेय इन लोगोंको ही है। मेरा नाम तो केवल नाम मात्रके लिये है तथा मेरी प्रार्थना है कि भविष्यमें फिर कभी ऐसा गलत परिचय नहीं देना चाहिये।

इन्हीं बातोंको कुछ विस्तार पूर्वक बड़े भाव भरे ढंगसे कहकर श्रीभाईजी अपने आसनपर विराजमान हो गये। मैं भी उस समय वहाँ उपस्थित था। श्रीभाईजीके उपर्युक्त शब्द सुनकर केवल मैं ही नहीं, सारे श्रोता लोग अत्यधिक विह्वल हो उठे। मेरे शरीरमें तो रोमाञ्च हो रहा था। मेरे नेत्रोंसे टप-टप आँसू चू रहे थे और यही दशा मेरे पास बैठे हुए कई भाइयोंकी थी। सभी मन-ही-मन श्रीभाईजीकी इस बन्धु-भावनाकी जय-जयकार बोल रहे थे। ■

पं. श्रीहरिवक्षजी जोशी

मेरे आत्मीय बन्धु

भाईजीके साथ मेरा प्रथम परिचय संवत् १९७८ में बम्बईमें हुआ। मैं उस समय अध्ययन समाप्त करके बम्बई गया था। वहाँ जाते ही संयोगवश श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीकी ओरसे स्थापित 'व्यंकटेश्वर-प्रेस' खेतवाड़ीमें उनके धर्मार्थ औषधालयके प्रधान चिकित्सकका स्थान मुझे प्राप्त हो गया। मैं खेतवाड़ी, बम्बईमें रहने लगा। संस्कृत-साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी रुचि मेरे संस्कारोंमें थी। मेरे पिता-पितामह– सभी संस्कृतके विद्वान् थे। संस्कृतके वातावरणमें ही पालन-पोषण-शिक्षण होनेसे मुझे संस्कृत-प्रेमी साथीकी संगतिकी आवश्यकताका अनुभव होता था।

उन दिनों बम्बईमें सुखानन्दजीकी धर्मशालामें सायंकाल सत्संग हुआ करता था, जो भाईजीकी प्रेरणा, प्रयत्न और सहयोगसे चलता था। मैं भी वहाँ जाने लगा। प्रथम परिचयमें ही मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उनकी साधुता, सरलता, मृदुभाषिता, समादरकी भावना आदि हर एक अपरिचित व्यक्तिको चिर-परिचित-सा बना देनेवाली थी। इस प्रकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति व्यापारी-समाजमें तो क्या, महात्माओंके आश्रममें भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होती है। शनैः शनैः प्रेम और परिचय बढ़ने लगा। हृदयकी संकोच-ग्रन्थि टूट गयी। वे मुझे अपना और मैं उन्हें अपना आत्मीय बन्धु समझने लगा। हृदयकी बातें खुलकर निःसंकोच भावसे होने लगीं। भाईजी उन दिनों व्यापार करते थे। बम्बईमें उस समय मारवाड़ियोंके हाथमें सट्टेका व्यापार ही प्रधान था। भाईजी उसीमें संलग्न थे, परंतु इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हिन्दीके भक्तिप्रधान कविता-भजन आदि बनानेमें ही थी। श्रीमम्मटाचार्यका सिद्धान्त है कि कवित्वशक्ति पूर्वजन्मोंके

संस्कारसे जन्म लेती है। ऐहिक प्रयाससे प्राप्त कवित्वशक्ति कृत्रिम होती है– *'स्वाभाविकात् कृत्रिममन्यदेव'।*

उन दिनों गायकाचार्य भक्त-हृदय श्रीविष्णु दिगम्बर महाराजकी बम्बईमें बहुत प्रसिद्धि थी। *'रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम'* की ध्वनि प्रत्येक स्त्री-पुरुष-बालकके मुखसे चलते-फिरते निकलती थी। वे *'रघुपति राघव राजा राम'* के कीर्तनमें छत्तीसों राग सुना देते। भाईजीपर उनकी बड़ी कृपा थी। वे कभी-कभी भावविभोर होकर एकान्त कमरेमें मीराकी तरह 'मीरानृत्य' करते थे और जब वे एकतारा लेकर *'पद घुँघरु बाँध मीरा नाची रे'* गाते थे, तब दर्शक लोग देह-गेहकी सुधि भूलकर चित्र-लिखित-से हो जाते थे। उस नृत्यको देखनेका सौभाग्य किन्हीं-किन्हीं महानुभावोंको ही मिलता था, क्यों कि उसमें वे लोग ही प्रवेश पा सकते थे, जिनको वे अधिकारी समझकर आज्ञा देते थे। भाईजी श्रीविष्णु दिगम्बरके अन्तरंग विश्वासियोंमें अनन्यतम थे, अतः वे उस अलौकिक आनन्दमें सम्मिलित होते थे। उन दिनों भाईजीने एक भजनोंकी पुस्तिका लिखी, जिसका नाम था 'पत्र-पुष्प'। भाईजी न तो राग-रागिनियोंके ज्ञाता थे, न गायक ही। उनके हृदयमें जब जो भाव उत्पन्न होते, उन्हें वे तुकबन्ध कर देते थे। जब वह पुस्तक श्रीविष्णु दिगम्बरको सुनायी गयी, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और कार्यव्यस्त रहते हुए भी उन्होंने उसके प्रत्येक भजनपर रागिनीका नाम बैठा दिया। भाईजी पिंगलशास्त्रके ज्ञाता या पण्डित नहीं थे, न उन्होंने संस्कृत या हिन्दी-साहित्यके काव्य या छन्दःशास्त्रकी शिक्षा ही किसी गुरुसे प्राप्त की थी। इनकी कविताशक्ति सहज तथा स्वाभाविक थी।

श्रीभाईजी जब बम्बईको त्यागकर आने लगे, उस समय उनके समक्ष बहुत प्रलोभन आये। एक प्रतिष्ठित व्यापारीने कई हजार रुपये मासिक तथा अपने फर्ममें कुछ हिस्सा देनेका प्रस्ताव किया, पर श्रीभाईजीने उसे स्वीकार नहीं किया और वे 'कल्याण'का सम्पादन करनेके लिये गोरखपुर आ गये। जब वे आने लगे, तब मैंने उनसे कहा– भाईजी, आप कहते हैं कि मैं 'कल्याण'की निःस्वार्थ सेवा करूँगा, उससे कुछ भी नहीं लूँगा तो आपका खर्चा कैसे चलेगा?

इसके उत्तरमें भाईजी बोले– मेरे पास पचीस हजार रुपये हैं, जिनके व्याजसे आरामसे गृहस्थीका निर्वाह हो जायगा।

मैंने फिर भाईजीसे कहा– इतने रुपयोंके व्याजसे यदि घर-खर्च नहीं चला और आप 'कल्याण'से या सेठजी श्रीजयदयालजीसे या उनके भक्तोंसे कभी कुछ भी परोक्ष या प्रत्यक्ष सहायता ग्रहण कर लेंगे तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

उसपर वे बोले– आप निश्चिन्त रहिये। आपको दुःखी होनेका अवसर भगवानकी कृपासे आयेगा ही नहीं।

उनके शरीर त्यागनेके दस दिन पहले जब मैं उनसे मिलने गोरखपुर गया, तब उन्होंने कहा– पण्डितजी, आपने मुझे बहुत बड़े दोषसे बचनेकी जो बात कही थी, वह मुझे बराबर याद रही और उसके कारण मैं अनेक दोषोंसे बच गया। भगवानकी कृपासे और आपके आशीर्वादसे मेरा वह व्रत अक्षुण निभ गया। आपने मुझे बम्बईमें भागवतके सरस मधुर श्लोकोंको सुनाकर मेरी भागवतमें और भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णमें प्रीति बढ़ानेमें बड़ी सहायता की।

भाईजी अत्यन्त सरल, निष्कपट और विनम्र थे। आत्माभिमान उन्हें छूतक नहीं गया था। इस साधुता और निरभिमानताका नमूना है उनके द्वारा लिखी गयी वह भूमिका, जो मेरे द्वारा प्रकाशित रासपञ्चाध्यायीमें छपी है। उस भूमिकामें वे लिखते हैं– लगभग चालीस वर्ष पूर्व बम्बईमें लगातार बहुत दिनोंतक श्रीजोशीजी महाराज श्रीमद्भागवतके मधुर प्रसंग तथा उनका रहस्य सुना-सुनाकर आप्यायित करते थे। उनकी इस महती कृपासे श्रीमद्भागवतके तथा भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णके प्रति मन-बुद्धिके समर्पणकी बड़ी ही प्रबल प्रेरणा मिलती थी। मैं इस परम प्रीति तथा अहैतुकी कृपाके लिये सदा ही श्रीजोशीजीका ऋणी हूँ।

भाईजी केवल भक्त ही नहीं, ज्ञानी भक्त थे। उनसे कई बार मेरी परमतत्त्वके विषयमें चर्चा होती थी। मैंने उनसे पूछा– आप राधा-माधवका ध्यान करते हैं, उनके युगल-नामको जपते हैं, उनके विषयमें आपकी क्या धारणा है ?

उन्होंने उत्तर दिया– *परमतत्त्व एक अद्वैत अखण्डस्वरूप है। उसमें वास्तवमें कोई भेद नहीं है। वह जब भक्तोंको विशुद्ध प्रेम-रस पिलाना और उनके विशुद्ध हार्दिक प्रेम-रसका आस्वादन करना चाहता है, तब एक ही तत्त्व दो रूपोंमें अभिव्यक्त हो जाता है। प्रेम-रसका आस्वादन करनेके लिये वही प्रेमका आश्रयालम्बन और विषयालम्बन बना हुआ है। जिस प्रकार वेदान्ती मानते है– 'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी विशुद्धा चितिरेव केवला' यही मैं मानता हूँ। मानता ही नहीं, अनुभव भी करता हूँ।*

ऐसे ज्ञानी भक्तोंको लक्ष्य करके ही भगवानने गीतामें कहा है– *'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'।* ■

डा. घनश्यामदासजी तोलानी

[१] सभा-मंचपर दर्शन

कभी-कभी संयोगवशात् ऐसी बात बन जाती है, जिसपर बड़ा विस्मय होता है। प्रथम भेंटके बीस दिन बाद पुनः श्रीभाईजीके शुभ दर्शनका मुझे सौभाग्य मिला। १५ अगस्त १९४७ को भारतके विभाजन और सत्ता-हस्तान्तरणका दिवस था। सत्ता-हस्तान्तरणके समारोहको देखनेके लिये मैं ९ अगस्तको सपरिवार दिल्ली पहुँच गया। दूसरे दिन १० अगस्तको मैं दिल्लीके हिन्दू महासभा भवन गया। वहाँ आल इण्डिया हिन्दू कन्वेन्शनका अधिवेशन हो रहा था। अधिवेशनके मंचपर पूज्य श्रीभाईजीको देखकर मेरे आनन्द और आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। मंचपर वीर सावरकर, डा. मुञ्जे, श्री. बी. सी. चटर्जी आदि विख्यात हिन्दू नेताओंके साथ श्रीभाईजी बैठे हुए थे।

अधिवेशनके कार्यक्रमके समाप्त होते ही मैं पूज्य श्रीभाईजीसे मिला। हमलोगोंको देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने हमलोगोंको रुकनेके लिये कहा।

इस अधिवेशनके थोड़ी देर बाद ही वहाँ 'गोवध निवारक संघ' का अधिवेशन आरम्भ हुआ। मंचपर पूज्य श्रीभाईजी तो थे ही, इसके अलावा महाराजा भरतपुर, महाराजा फरीदकोट, श्रीरामकृष्णजी डालमिया, श्रीशिब्बनलालजी सक्सेना आदि-आदि महानुभाव भी विराज रहे थे।

इस अधिवेशनमें गोवध-बन्दीपर बल दिया गया और अनेक ओजस्वी भाषण हुए। भले यह

मेरा व्यक्तिगत दृष्टिकोण हो, पर उस दिन मंचपर जितने भी भाषण हुए, उन सबमें श्रीभाईजीका भाषण मुझे बड़ा तर्कपूर्ण, मार्मिक, विचारोत्तेजक लगा। श्रीभाईजीके भाषणने मेरे अन्तरको झकझोर दिया। उनके व्यथित हृदयकी पीड़ा सारे वातावरणमें छा गयी।

मैं सोचने लगा कि श्रीभाईजीके हृदयमें गो माताके लिये कितनी अधिक भक्ति है और गोवधसे होने वाली कितनी अधिक पीड़ा उनके रग-रगमें समायी रहती है। 'गोवध निवारक संघ' के अधिवेशनके समाप्त होते ही हमलोग श्रीभाईजीसे मिले। कुछ देरतक उनसे बात होती रही। तत्पश्चात् हमलोग उनसे विदा हुए।

भारत-विभाजनके पश्चात् हमलोगोंको सिन्ध छोड़ना पड़ गया। सन् १९४८ का पूरा वर्ष हमलोगोंने अयोध्यामें बिताया। इसके बाद सन् १९४९ में हमलोग नासिकमें जाकर बस गये। अब सालमें एक-दो बार ही पूज्य श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गोरखपुर आ पाते थे। जब-जब मैं गोरखपुर आया, उनके प्यारका वही उमड़ता सागर मुझे सराबोर कर देता था। मेरी अपात्रता, मेरी अयोग्यता, मेरी न्यूनताकी ओर उनका ध्यान कभी गया ही नहीं। उनके स्नेह और उनकी आत्मीयतामें कभी अन्तर आया ही नहीं। श्रीभाईजी जैसे महान संतका सांनिध्य पाकर मैं अपनेको सौभाग्यशाली मान रहा था और मान रहा हूँ।

[२] स्वागत-समारोहसे दूर

सन् १९५६ के जनवरी मासमें गीताप्रेसकी ओरसे तीर्थ-यात्रा ट्रेनके चलनेका कार्यक्रम बना। पूज्य श्रीभाईजीको ट्रेनकी भीड़ और यात्राकी हलचल तनिक भी पसन्द नहीं थी, पर पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के कथनका आदर श्रीभाईजीको करना पड़ा। पूर्ण अनिच्छा होते हुए भी तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें जानेके लिये सहमति देनी ही पड़ी। यह निश्चित हो गया कि तीर्थ-यात्रामें पूज्य श्रीभाईजी सपरिवार जायेंगे ही।

तीन धामकी यात्रा होनेके कारण इसमें तीन माससे भी अधिक समय लगने वाला था, अतः यात्राके मध्य जो तीर्थ-यात्री बीमार पड़ जायें, उनकी चिकित्सा तथा सँभाल करनेके लिये पूज्य श्रीभाईजीने मुझ दासको नासिकसे बुला लिया और इस प्रकार तीन माससे अधिक समयतक श्रीभाईजीके साथ रहनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हो सका।

२७ जनवरी १९५६ के दिन तीर्थ-यात्रा-ट्रेन वाराणसीसे रवाना हुई। चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या, नैमिषारण्यकी यात्रा करके ट्रेन दूसरी फरवरीको हरिद्वार पहुँची। हरिद्वारका एक प्रसंग विशेष रूपसे याद आ रहा है। हरिद्वारकी पंजाब सनातन धर्म प्रतिनिधि सभाके महाबीर दलके अध्यक्ष श्रीचिरञ्जीलालजीने श्रीभाईजीका स्वागत एवं सम्मान करनेके लिये एक विशेष समारोहका आयोजन किया था। इस समारोहमें श्रीभाईजीको अभिनन्दन-पत्र देनेका विचार था। जो अभिनन्दन पत्र दिया जाने वाला था, उसको रेशमी कपड़ेपर सुनहरे अक्षरोंमें छपवा लिया गया था। छपे हुए वस्त्रको सुन्दर फ्रेममें मढ़वा लिया गया था और इसीको समारोहमें समर्पित किया जाने वाला था। इस मढ़े हुए अभिनन्दन-पत्रको लेकर श्रीचिरञ्जीलालजी सबेरेके समय श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये आये और बतलाया कि समारोहका क्या-क्या कार्यक्रम है।

श्रीभाईजी उस आयोजनके विषयमें सुनकर तथा उस अभिनन्दन पत्रको देखकर बड़े संकोचमें पड़ गये। उस समय श्रीभाईजीकी जैसी गम्भीर मुद्रा थी और उनके मुख-मण्डलपर

सात्त्विक संकोचकी जैसी घनीभूत छाप थी, वह मेरे मर्मको छू रही थी। उनकी वह मुखाकृति आज भी मेरे स्मृति-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है। श्रीभाईजीने बड़े स्नेहके साथ श्रीचिरञ्जीलालजीके गलेमें अपनी बाँहें डालकर उनसे विनम्र शब्दोंमें कहा– मैं आपकी अपार प्रीति, अगाध सद्‌भाव और महती कृपाके लिये हृदयसे आभारी हूँ, पर यह चीज मेरे मनके अनुकूल नहीं है। मेरा मन इसे किसी भी रूपमें स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं है, अपितु विरोध करता है। आप कृपा करके इस आयोजनके विचारको अपने मनसे ही निकाल दीजिये।

श्रीचिरञ्जीलालजीने कहा– अब यह कैसे सम्भव हो सकता है ? हमने तो सार्वजनिक रूपसे इस कार्यक्रमकी घोषणा भी कर दी है। उसकी पूरी तैयारी हो चुकी है। हरिद्वारके नागरिक, मुख्यतः भक्तजन उत्सुकता पूर्वक इस कार्यक्रमकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपका सत्कार करनेकी उनमें जो आतुरता है, उसका बयान मैं किन शब्दोंमें करूँ ? उनको निराश करनेकी बात मैं सोच ही नहीं सकता।

श्रीभाईजीने अब श्रीचिरञ्जीलालजीके हाथोंको अपने हाथोंमें ले लिया और एक किनारे ले जाकर उन्हें प्यार पूर्वक समझाने लगे। श्रीभाईजी अपने दृढ़ नियमकी बात बतलाकर उनसे बड़ा अनुनय-विनय करने लगे। श्रीचिरञ्जीलालजीने जब यह देख लिया कि अभिनन्दन पत्रका विरोध मात्र दिखावा नहीं, बल्कि विरोधके पीछे श्रीभाईजीकी सच्ची और आन्तरिक भावना कार्य कर रही है तो फिर श्रीचिरञ्जीलालजीने श्रीभाईजीकी बात मान ली। इससे श्रीभाईजीको बड़ा सन्तोष हुआ।

इस प्रकारके कई प्रसंग तीर्थ-यात्रामें कई जगहोंपर आये, पर मद्रासमें अभिनन्दनसे छुटकारा पानेके लिये श्रीभाईजीको विशेष प्रयत्न करना पड़ा। तीर्थ-यात्रा-ट्रेन १४ अप्रैल १९५६ को मद्रास पहुँची। वहाँ भी श्रीभाईजीके स्वागत-समारोहका आयोजन हुआ और स्वागताध्यक्ष थे मद्रासके राज्यपाल परम सम्मान्य श्रीश्रीप्रकाशजी, जो थे श्रीभाईजीके अनन्य स्वजन। वाराणसी-निवासी एवं परम-आत्मीय श्रीश्रीप्रकाशजीको समझा सकना बड़ा कठिन था, पर श्रीभाईजीने भरपूर प्रयास किया और अन्ततः श्रीभाईजीको अपने प्रयासमें सफलता मिली।

क्या मद्रास, क्या हरिद्वार, क्या कलकत्ता, क्या बम्बई और क्या अन्यत्र, सभी जगह श्रीभाईजीको सफलता मिली केवल इसीलिये कि श्रीभाईजीके मनमें इन अभिनन्दन-पत्रोंके लिये आन्तरिक वितृष्णा थी। महाकवि मिल्टनने लिखा है Fame, the last infirmity of noble mind अर्थात् यशेच्छा मानवके निर्मल मनकी अन्तिम दुर्बलता है और इस दुर्बलतासे श्रीभाईजी सर्वथा दूर थे। यश-लिप्सासे सर्वथा-सर्वथा शून्य होकर धर्म और समाजकी सेवा करना, इसीमें श्रीभाईजीकी महानता और सफलताका रहस्य छिपा हुआ है।

[३] मेरे प्रश्नोंका उत्तर

सन् १९५९ के नवम्बर मासकी बात है। मेरे मनके भीतर वैचारिक संघर्ष चल रहा था। बुद्धिमें स्थिरता थी नहीं और अन्तर्द्वन्दसे मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहा था। एक जागतिक, एक पारिवारिक और एक आध्यात्मिक, इन तीन प्रश्नोंके कारण मेरी रति-मति-गति बड़ी ही कुण्ठित हो रही थी। जब मैं सर्वथा विवश दशाको पहुँच गया तो समाधान प्राप्त करनेके लिये

नासिकसे चल पड़ा गोरखपुरकी गीतावाटिकाके लिये। ट्रेनमें बैठा-बैठा मैं यही सोच रहा था कि वहाँ पहुँचकर श्रीभाईजीसे कुछ एकान्त समय माँगूँगा और अवश्य ही वहाँ मुझे सही मार्ग-दर्शन मिलेगा।

२४ नवम्बर १९५९ के प्रातःकाल छः बजे मैं गीतावाटिका पहुँचा। जाते ही पता चला कि सबेरे आठ बजे श्रीभाईजीका प्रवचन हुआ करता है। मैं शौच-स्नानादिसे शीघ्र निवृत्त होनेमें जुट गया। अपने प्रश्नोंकी जटिलताके कारण मनमें बड़ी उदासी तो थी, पर संत-दर्शनका सौभाग्य देखकर मनमें प्रसन्नता भी थी। अपने आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर मैं पंडालमें प्रवचनके समय पहुँच गया।

प्रवचन सुनकर मुझे तो बड़ा ही विस्मय हो रहा था। क्या श्रीभाईजी अन्तर्यामी हैं? क्या उन्होंने मेरे प्रश्नोंको जान लिया? आजका सारा प्रवचन मेरे तीन प्रश्नोंको लेकर था। वे मेरे तीन प्रश्नोंका उत्तर ही अपने आजके प्रवचनमें देते रहे। श्रीभाईजीने अपने प्रवचनमें कहा— *जगतके कल्याणकी भावना एक मीठा मोह मात्र है। यह भावना समाज-सुधारकके जीवनमें एक प्रकारके अभिमानको उत्पन्न कर देती है। जिसने आत्म-सुधार नहीं किया, उससे सच्चा समाज-सुधार हो नहीं सकता। प्रचारका आधार आचार है। जगतमें प्रचार करनेके पहले जीवनमें आचार आवश्यक है। आचरण-शून्य व्यक्तिके द्वारा शुभका प्रचार कल्पना मात्र है। सच्चे साधकको आत्म-सुधारपर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। साधकको विभिन्न आध्यात्मिक मतों और सिद्धान्तोंके जंजालसे भी बचना चाहिये। मत-मतान्तरोंकी जानकारीसे प्रायः साधकोंकी बुद्धि भ्रमित हो जाया करती है। विभिन्न वादोंका विवेचन एक प्रकारसे विवादका विस्तार ही है। वादोंका खण्डन-मण्डन-स्थापन करना आचार्योंका काम है। मतों-वादोंके विवेचक और प्रवर्तक महान आचार्योंकी नकल साधकके लिये उचित नहीं है। साधकको तो अपने साधन-पथपर चुपचाप चलना चाहिये, भले जगत मूर्ख कहे। साधकको अपने परिवारके मध्य ऐसे ही रहना चाहिये, जैसे नाट्यमंचका अभिनेता मंचपर अभिनय करते समय अन्य पात्रोंके साथ रहता है। अभिनयकालमें अभिनेताका व्यवहार सभी पात्रोंके साथ यथोचित होता है। यह उसका बाह्याचरण है। ऐसा यथोचित आचरण करते हुए भी उसके मनमें आदिसे अन्ततक तटस्थ भाव रहता है। तटस्थ भाव वाला साधक ही अपने साधन-पथपर शीघ्र बढ़ पाता है। जैसे भी बने, जीवनके सूर्यास्तके पहले-पहले साधक अपना काम बना ले, इसीमें जीवनकी सफलता और सुन्दरता है।*

मैं प्रायः अपनी डायरी लिखा करता हूँ। अपनी डायरीके पृष्ठोंके आधारपर ही उपर्युक्त कुछ बातें लिखनेका मैं साहस कर सका। ■

श्रीपरमानन्दजी कानोड़िया

---

[१] बालकोंके साथ बालक

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं श्रद्धेय बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के परम अभिन्न मित्र पूज्य श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाका पौत्र हूँ। नितान्त घरेलू आत्मीयताके नाते

मुझे श्रद्धेय बाबूजीका सीमातीत वात्सल्य मिला है। मेरे दादाजी जानते थे कि मेरे मित्र हनुमानको भगवत्साक्षात्कार हो चुका है। सन् १९२७ के सितम्बर मासमें जब जैसीडीहमें श्रद्धेय बाबूजीको पूज्य श्रीसेठजीकी संनिधिमें सर्व प्रथम भगवद्दर्शन हुआ था, तब मेरे दादाजी भी वहीं थे और उन्होंने उस भगद्दर्शनका सारा विवरण अपने हाथसे लिखा था। एक दिन मैंने दादाजीसे प्रार्थना की कि हमें भी भगवानका दर्शन करा दें, तब उन्होंने मुझको सिखला-पढ़ाकर कहा— तुम जाकर उनसे विनती करो कि मुझे भी भगवद्दर्शन करा दें।

तब मेरी आयु छः-सात सालकी रही होगी। दादाजीकी प्रेरणासे मैं श्रद्धेय बाबूजीके पास जाकर कहने लगा— मुझे भी भगवद्दर्शन करा दीजिये।

बाबूजीने हँसते हुए विनोदकी भाषामें कहा— तुम मेरी गंजीकी पाकेटको अपने हाथसे टटोल लो और उसमें भगवान हों तो उस भगवानको तुम देख लो। मेरी पाकेटको, मेरी काखको, जहाँ-जहाँ तुमको संदेह हो, वहाँ-वहाँ खोज कर लो और भगवान मिल जायें तो जरूर दर्शन कर लो।

मुझे लगा कि श्रद्धेय बाबूजी मुझे भुलावा दे रहे हैं। बचपना तो था ही, मैं उनके पेटपर चढ़ गया और मचल-मचलकर अपनी बात कहने लगा। मैं अपने ढंगसे मचलता रहा और वे अपने ढंगसे बहलाते रहे। इसीमें काफी समय निकल गया। इस सारी झकझोरा-झकझोरीमें उन्होंने एक बार भी यह नहीं कहा कि तुम मुझे तंग कर रहे हो या तुम मेरे पाससे चले जाओ। सचमुच बालकोंके साथ बालकवत् बन जानेमें उनको आनन्द मिलता था।

[२] मित्र भावना

मेरे पूज्य दादाजी श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया रूबी जनरल इंश्योरेंश कम्पनीके महाप्रबन्धक थे, अतः कलकत्तेमें घर होते हुए भी उन्हें दिल्लीमें भी लम्बी अवधिके लिये रहना होता था। एक बार मेरे दादाजी दिल्लीमें थे और श्रद्धेय बाबूजी रतनगढ़में थे। मेरा अनुमान है कि यह बात सन् १९४० के आस-पासकी होनी चाहिये। रतनगढ़में श्रद्धेय बाबूजी काफी बीमार पड़ गये। चिकित्साके बाद भी जब वहाँ कोई सुधार दिखलायी नहीं दिया तो मेरे दादाजीने श्रद्धेय बाबूजीको रतनगढ़से अपने पास दिल्ली बुला लिया। दादाजी बड़ी लगनके साथ बाबूजीकी चिकित्सा करवाने लगे। बाबूजीके पथ्य-परहेज-दवा-विश्राम आदिकी चिन्ता सदैव दादाजीके मनपर छायी रहती। बाबूजी मेरे दादाजीकी चिकित्सा-तत्परता, सेवा-परायणता, मैत्री-भावना आदि पर बलिहार हो गये। न जाने कितनी बार श्रद्धेय बाबूजी अपने प्रवचनोंमें मेरे दादाजीकी चर्चा किया करते थे।

मेरे ये ही दादाजी जीवनके अन्तिम दिनोंमें जब अत्यधिक रुग्ण हो गये तो पूज्य बाबा सहित श्रद्धेय बाबूजी कई बार हमारे घर आये और काफी दिनोंतक रहकर दादाजीकी देखभाल करते रहे। अन्तिम क्षणोंका दृश्य तो सर्वदा ही याद रहेगा। दादाजी चेतना-शून्य-अवस्थामें लगभग सात दिनोंतक पड़े रहे। पूज्य दादाजीकी मरणासन्न स्थिति होते ही उनको भूमिपर ले लिया गया। भूमिपर अचेतन पड़े हुए दादाजीके एक ओर श्रद्धेय बाबूजी बैठे हुए थे और दूसरी ओर पूज्य बाबा बैठे हुए थे। मेरा अनुमान है कि अन्तिम तीस-पैंतीस श्वास शेष रहे होंगे कि दादाजीने एक सचेतन एवं स्वस्थ व्यक्तिकी भाँति अपने नेत्र बाबाकी ओर खोल दिये और वे

आकाशकी ओर एकटक देखने लगे। तभी श्रद्धेय बाबूजीने हड़बड़ीके स्वरमें मुझसे कहा– जल्दीसे छन्नीमें कपूर रखकर आरतीकी सामग्री ला, आरती करनी है।

मैं भागकर ले आया। श्रद्धेय बाबूजीने कपूरको प्रज्वलित किया और वे खड़े होकर आरती करने लगे। मेरे मनमें बड़ा कौतूहल जाग उठा कि श्रद्धेय बाबूजी क्या कर रहे हैं? क्या वे अपने सामने बैठे हुए पूज्य बाबाकी आरती कर रहे हैं? अथवा मेरे पूज्य दादाजीकी आरती कर रहे हैं? कौतूहलवशात् मैं अपने दोनों घुटनोंके बल बैठकर और दोनों हथेलियोंको भूमिपर टिकाकार अपने दादाजीके ऊपर किंचित् झुक गया और उनके खुले नेत्रोंकी ओर देखने लगा। मैं देखने लगा यह जाननेके लिये कि इस समय अचानक क्या बात घटित हो गयी? तभी श्रद्धेय बाबूजीने अपने हाथसे मुझे झकझोरते हुए कहा– अरे, भगवान सामने खड़े हैं और तू बैठा है? जल्दीसे खड़ा हो।

श्रद्धेय बाबूजीके ऐसा कहते ही मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बाबूजी नभमें विराजित भगवानकी आरती उतारते रहे। मेरे दादाजीकी दृष्टि नभस्थ भगवानपर टिकी हुई थी। मेरे खड़े होनेके लगभग आधे मिनट बाद ही दादाजीने अपने नेत्र सदाके लिये बन्द कर लिये। उचित ही है, भगवानको देख लेनेके बाद फिर जगतको क्या देखना?

अब रहस्य खुल चुका था कि श्रद्धेय बाबूजीने आरतीकी सामग्री लानेके लिये क्यों कहा था? जिन दादाजीको बाबूजीने अपना मित्र कहा और मनसे कहा तथा मनसे माना, उस मित्रताका निर्वाह किस सीमातक होना चाहिये, इसका एक अनोखा उदाहरण पूज्य बाबूजी अपने पीछे छोड़ गये।

[३] परिवारका हित-चिन्तन

परमपूज्य दादाजीके निधनसे मनमें खिन्नता थी। जिनकी छत्रछाया अबतक रही, उस छत्रछायाके हटनेसे मनको खिन्न होना ही था, पर यह कितनी सुन्दर बात है कि जन्म-जन्मान्तरतक तप-जप करनेके बाद भी जीवनके अन्तकालमें जिन भगवानके नामका उच्चारण नहीं हो पाता, उन्हीं भगवानका दर्शन करते हुए मेरे पूज्य दादाजीने महाप्रयाण किया। उनके मुनिगण-दुर्लभ-सौभाग्यसे हमारा कुल पवित्र हो गया, पर उससे अधिक भी महान सौभाग्य इस रूपमें उदित हुआ कि उन दादाजीके जाते ही श्रद्धेय बाबूजी जैसे महान सिद्ध संत हमें नये 'दादाजी'के रूपमें मिल गये, जो हमारे परिवारके हित-चिन्तनमें सदा डूबे रहते थे।

परिवर्तन जगतका नियम है। उगता हुआ सूर्य ढलता ही है। *'सबै दिन जात न एक समान'* के सिद्धान्तानुसार हमारे परिवारमें भी तंगीके दिन आये। तंगी थी, पर हमने कभी भी इसकी जानकारी श्रद्धेय बाबूजीको होने नहीं दी। हमें यह रंच मात्र भी रुचिकर नहीं था कि हमारी समस्यासे श्रद्धेय बाबूजीका हृदय कभी विकल हो। हमने अपना हाल छिपाना चाहा, पर वह छिप न सका। हमारे एक स्वजनने इसकी सांकेतिक झलक श्रद्धेय बाबूजीको दे दी।

श्रद्धेय बाबूजी इस टोहमें थे कि कभी घनश्याम (अर्थात् मेरे पूज्य पिताजी) से एकान्तमें बात करूँ। एक बार मैं अपने पिताजीके साथ बाबूजीके दर्शनार्थ गोरखपुर आया हुआ था। हमलोग श्रद्धेय बाबूजीके पास कमरेमें बैठे थे। ज्यों ही एकान्तका अवसर आया, श्रद्धेय बाबूजी सरक करके मेरे पिताजीके पास आ गये और सिरपर तथा पीठपर अपना प्यार भरा हाथ फेर

करके कहने लगे– घनश्याम, तुमने अबतक यह बात क्यों छिपायी कि तुम कुछ कष्टमें हो ? मेरे रहते भला तुम कष्ट पाओ ! अभी चलो मेरे साथ बाबाके पास। इसके बारेमें मैं उनसे बात करूँगा।

पूज्य पिताजीको मन-ही-मन इस बातसे बड़ा कष्ट हो रहा था कि श्रद्धेय बाबूजीको हमारे उन स्वजनने यह बात क्यों बता दी। उन स्वजनका स्वाभाविक स्नेह हम लोगोंके प्रति था, इसीलिये उन्होंने इसका संकेत बाबूजीसे कर दिया, पर यह हमें प्रिय नहीं लगा। पिताजीका मन खिन्नतासे भर गया। श्रद्धेय बाबूजीके शब्दोंको सुन-सुन करके पिताजीका मन खिन्नतासे अधिकाधिक भरता चला जा रहा था और श्रद्धेय बाबूजीके मनमें त्वरा भरी हुई थी कि इन बच्चोंके लिये क्या कर दिया जाय। श्रद्धेय बाबूजी अपने कमरेसे चल पड़े पूज्य बाबाकी कुटियाकी ओर और उनके पीछे चलने लगे पिताजी और मैं। कुटियाका फाटक खोलकर बाबूजी अन्दर बाबाके पास गये। बाबूजीने बाबाको अपने पास बैठाकर हम दोनोंको भी समीप बैठा लिया। वे बाबासे कहने लगे– बाबा, यह अपना घनश्याम है न, आजकल इसका परिवार कुछ संकोचमें है, अतः इनके लिये कुछ करना है।

बाबा तो मौन थे। उन्होंने लिखकर कहा– आप जो कहें, वही मैं कर दूँ। जिसके लिये आपके अन्तरमें वेदना है, उसके समान भाग्यशाली कौन भला ? आपकी वेदना मेरी वेदना है। वेदनाकी रेखाका भी उदय आपके अन्तरमें क्यों हो ? आप जो कहें, वही मैं करनेको तैयार हूँ।

बाबूजीसे कहनेके बाद बाबा पिताजीसे कहने लगे– आप बता दें, आप क्या चाहते हैं ? सच माने, आप जो चाहेंगे, वह हो जायेगा।

बाबाके कहते ही बाबूजीने पिताजीसे कहा– हाँ, हाँ घनश्याम ! संकोच छोड़कर बता दो कि क्या चाहते हो। सचमुच बता दो।

कुटियामें बैठते ही श्रद्धेय बाबूजी एवं बाबाकी जो पारस्परिक बात हुई, उसे सुनकर पिताजीका हृदय बड़ा द्रवित हो रहा था। इसके बाद अपने प्रति बाबाकी और फिर बाबूजीकी कही हुई बात सुनकर वे तो और भी उमड़ पड़े। आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगे। अपने कपोलोंको पोंछते हुए रूँधे स्वरमें पिताजीने यही कहा– बाबा ! मुझे कुछ नहीं चाहिये, सचमुच कुछ नहीं चाहिये। आपका यह प्यार सदा बना रहे, बस, यही याचना करता हूँ। रातके बाद सबेरा आता ही है। ये दुःखके दिन भी निकल जायेंगे। इसके लिये हमें कुछ नहीं कहना है। बस, आपका प्यार चाहिये, एकमात्र प्यार।

पिताजीके इस उत्तरको सुनकर बाबा तो एकदम रीझ गये। फिर बाबाने सराहनाके और आशीर्वादके अनेक शब्द कहे। आशीर्वादके वे शब्द तो हमारे लिये आधार बन गये। आधार बन गये उस अँधियालीमें, जो हमारे परिवारपर छायी थी और सबसे बड़ी बात यह कि पूज्य बाबूजीके उस उछलते प्यारको देखकर दुःखके दिन दुखी नहीं कर पाते थे। प्यारका मादक प्रभाव ऐसा ही हुआ करता है।

[४] पिताजीकी सँभाल

श्रद्धेय बाबूजी गोरखपुरमें और हमलोग कलकत्तेमें थे, पर यह दूरी कभी भी निजत्व भावनामें बाधक नहीं हुई। दूर रहते हुए भी श्रद्धेय बाबूजी निकट थे, एकदम हमारे पास थे।

उनकी वत्सलताकी गहरी अनुभूति सदैव पदे-पदे होती रहती थी। हमारे परिवारके सभी बच्चे प्रति सप्ताह श्रद्धेय बाबूजीको अपना प्रणाम पत्र द्वारा निवेदित करते ही थे। मेरी दो पुत्रियाँ जब सयानी होने लगीं तो उनके सम्बन्धकी चिन्ता पिताजीके मनपर छा गयी। एक ओर हमलोगोंकी साधारण स्थिति और दूसरी ओर विवाहमें होनेवाला असाधारण व्यय, इस समस्यासे अलग अगली समस्या यह थी कि वर खोजनेके लिये कहाँ-कहाँ भटका जाय ? मेरी और पिताजीकी चिन्ताका आभास श्रद्धेय बाबूजीको हो गया और उन्होंने तुरन्त सान्त्वना दी– ये बेटियाँ तुम्हारी नहीं, मेरी हैं। तुम क्यों चिन्ता करते हो ? इनका सम्बन्ध तो घरपर बैठे-बैठे हो जायेगा और विवाह भी सुन्दर-से-सुन्दर होगा।

अब चिन्ताका कारण ही समाप्त हो गया। श्रद्धेय बाबूजीसे अव्यर्थ आश्वासन पाकर मेरे पिताजी ऐसे निश्चिन्त हो गये, मानो कोई समस्या रही ही नहीं। बस, एक ही खेद मुझे था और है कि जो पिताजी मनसे पूर्ण निश्चिन्त और श्रद्धेय बाबूजीपर पूर्ण निर्भर थे, वे अपनी आँखोंके सामने अपनी पौत्रीका विवाह नहीं देख पाये। पौत्रीके विवाहसे बहुत पहले ही पिताजीने हमलोगोंसे सदाके लिये बिदाई ले ली।

जब पिताजी बहुत अस्वस्थ हो गये थे, तब मैंने श्रद्धेय बाबूजीसे कहा– पिताजीकी बीमारी देखकर मेरा धैर्य रह-रह करके छूट जाता है। मैं तो यही अनुरोध करता हूँ कि जैसे आपने दादाजीकी सँभाल की थी, वैसे ही यहाँ आकर पिताजीकी सँभाल करें।

श्रद्धेय बाबूजीने कहा– मैं अवश्य आता, पर प्रथम तो मैं स्वयं अस्वस्थ हूँ। इसके अलावा बाबाका मौनव्रत तथा सावित्रीकी माँकी अस्वस्थता, इन कारणोंसे वहाँ आना बड़ा कठिन लग रहा है, पर तुम घबड़ाओ नहीं। मैं ऐसी व्यवस्था कर रहा हूँ कि मानो मैं वहीं रहकर सँभाल कर रहा हूँ।

सचमुच श्रद्धेय बाबूजीने गोरखपुरमें बैठे-बैठे ही वैसी व्यवस्था कर दी। श्रद्धेय बाबूजीने कलकत्तेके ग्यारह व्यक्तियोंको पत्र व्यक्तिगत रूपसे लिखे और उनसे कहा कि आप लोग प्रतिदिन जाकर अति रुग्ण श्रीघनश्यामदासजी कानोड़ियाको सँभालें, परमानन्दको धीरज दें तथा प्रतिदिनकी हालतका विवरण पत्रसे सूचित करें।

श्रद्धेय बाबूजीके निर्देशके अनुसार श्रीबजरंगलालजी सिंहानिया, श्रीदाऊलालजी कोठारी, श्रीभीमराजजी फोगला, श्रीरामप्रसादजी मूँधड़ा, श्रीहनुमानप्रसादजी थरड इस प्रकार ग्यारह स्वजन प्रतिदिन पिताजीको सँभालने तथा आवश्यक सेवा-चर्या करनेके लिये आते थे और ये स्वजन प्रतिदिन गोरखपुर पत्र लिखकर वस्तु-स्थितिसे अवगत कराते थे। आयुकी अवधिके पूर्ण होनेपर पिताजीको तो जाना ही था, पर पिताजीकी सँभाल और सेवाके लिये श्रद्धेय बाबूजीने जो किया, वह सदा वर्तमानवत् दिखलायी देता रहता है।

[५] मेरी पुत्रीका विवाह

मुझे इस बातका खेद था और है कि मेरे पिताजी अपनी पौत्रीका विवाह नहीं देख पाये, परंतु पौत्रीके सम्बन्धकी बात उनके जीवनकालमें लगभग तय-सी हो गयी थी और इस सम्बन्धको सुनिश्चित करनेका सारा श्रेय पूज्य बाबाको ही है। जैसा सुयोग्य और सुशील वर और जैसा संभ्रान्त एवं सम्पन्न घर मिला, हम साधारण स्थितिवाले उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे,

पर संतानुग्रहसे चमत्कार भी साकार हो जाया करता है। जिस परिवारको श्रद्धेय बाबूजी अपना माने और जिस समस्याको वे निजी समझे, उसके लिये पूज्य बाबा स्वयं-प्रेरणासे सक्रिय हो उठे और उन्होंने मेरी सुपुत्री निर्मलके लिये जो घर-वर सुनिश्चित किया, उसके लिये हम सभी लोग सीमातीत रूपसे प्रसन्न थे। मेरी पूर्ण मान्यता थी और है कि यह सम्बन्ध मेरे पुरुषार्थका या प्रारब्धका फल नहीं, सर्वथा-सर्वथा संतानुग्रहका मंगलमय परिणाम था।

सम्बन्ध हो जानेके बाद विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी और यह विवाह सन् १९६७ के जुलाई मासमें होनेवाला था। ऐसे दायित्वका बोझ कभी मैंने सँभाला नहीं था और कुलकी प्रतिष्ठाके अनुरूप सारा कार्य उत्तम-से-उत्तम करना था। मैंने अपनी विवशता श्रद्धेय बाबूजीके सामने रखी। बाबूजीने कहा— तू घबड़ा मत। मैं स्वयं सारा सँभालूँगा।

और सचमुच श्रद्धेय बाबूजीने जो किया, वह आत्मीयताका अद्‌भुत नहीं, परमातिपरम अद्‌भुत उदाहरण है। इन दिनों श्रद्धेय बाबूजी प्रायः भाव-समाधिस्थ रहा करते थे, जिसके लिये उन्होंने एक नया शब्द गढ़ लिया था कि 'माथा खराब' हो गया है। ऐसी अन्तर्मुखी मनस्थितिमें भी श्रद्धेय बाबूजी स्वर्गाश्रमके सत्संगको शीघ्र पूर्ण करके ऋषिकेशसे सीधे कलकत्ते चले आये। कलकत्ते आनेके पूर्व अनेक स्वजनोंको उन्होंने निजी पत्र लिखा कि सुपुत्री निर्मलके मंगल परिणयके कार्यको अपना कार्य मानकर जिम्मेदारीसे पूरा करना है। पूज्य बाबूजीने सबको पत्र बहुत पहले इसलिये दे दिया कि शहरका जीवन बड़ा व्यस्त होता है और उस अत्यधिक व्यस्त जीवनमें भी इस कार्यके लिये वे लोग समुचित अवकाश निकाल सकें। और सचमुच लोगोंने आकर सारा कार्य सँभाल लिया। नाम मेरा हो रहा था, पर काम वे स्वजन कर रहे थे। वे स्वजन पूरे उत्साहसे और पूर्ण जिम्मेदारीसे काम भला क्यों न करें, जब उन सबके उर-प्रेरक स्वयं उनके परम श्रद्धास्पद बाबूजी थे। श्रद्धेय बाबूजीकी प्रेरणा और फिर श्रद्धेय बाबूजीकी स्वयं उपस्थिति, इससे सारा वैवाहिक कार्य इतनी सुन्दर रीतिसे सम्पन्न हुआ, जिसका अनुमान एक सांसारिकके लिये बड़ा कठिन है।

सुपुत्री निर्मलके विवाहके एक-दो प्रसंग बड़े महत्त्वपूर्ण एवं रोचक हैं। मेरा स्वास्थ्य थोड़ा ढीला ही चलता रहता था। सौभाग्याकांक्षिणी सुपुत्री निर्मलके मंगल परिणयके अवसरपर मेरे स्वास्थ्यने कुछ चिन्ताजनक मोड़ ले लिया। मुझे हार्ट-अटैककी थोड़ी-थोड़ी शिकायत हो गयी। सीनेमें हल्का-हल्का दर्द बना रहता था। ऐसी परिस्थितिमें मैंने श्रद्धेय बाबूजीसे कहा— कन्या-दान आपको करना है।

बाबूजीने मीठे शब्दोंमें कुछ फटकारते हुए और कुछ समझाते हुए कहा— परमा! तू तो सचमुच मूर्ख है। कहीं ऐसी भावुकतासे काम बनता है? यह काम तो माँ-बाप ही करते हैं और यह तुमको करना चाहिये।

मैंने निवेदन किया— इसके माँ-बाप तो सचमुच आप ही हैं। आप ही माँ-बापकी तरह सारा बोझ सँभाल रहे हैं। इसके अलावा, मेरी छातीमें दर्द हो रहा है। मेरे लिये बैठ सकना भी सम्भव नहीं है।

इसी बातको हेर-फेरके शब्दोंमें कहकर मैं उनसे बालहठ-सा करने लगा कि वे ही कन्यादान करें। फिर बाबूजी बड़े प्यार भरे शब्दोंमें कहने लगे— नहीं परमा! तू मेरी बात मान ले। ऐसा

बालहठ ठीक नहीं। तू मेरा है। मैं तेरी बात मान लेता, पर तू मेरी एक बातपर विचार कर। यदि आज मैं निर्मलका कन्या-दान कर दूँगा तो जितने स्वजन हैं, वे भी अपनी-अपनी कन्याके लिये मुझसे ऐसा ही करवाना चाहेंगे और मुझे सभी लोग तंग करेंगे, अतः तुमको बालहठ नहीं करना चाहिये।

पूज्य बाबूजीकी यह बात सचमुच मेरी समझमें आ गयी कि निर्मलका कन्या-दान करनेसे श्रद्धेय बाबूजीके लिये एक नये प्रकारकी परेशानीका सूत्रपात हो जायेगा। मेरा भी मन यही सोचने लगा कि यह कन्या-दान मुझे ही करना चाहिये, पर मेरे तो सीनेमें दर्द हो रहा था, अतः मैं चिन्ता कर रहा था कि मैं कैसे बैठ पाऊँगा। इसी समय एक और बात हुई। श्रद्धेय बाबूजी मुझे समझानेके लिये अपनी बात प्यार भरे ढंगसे कहते जा रहे थे तथा अपना प्यार भरा हाथ मेरी पीठपर फेरते जा रहे थे। पीठपर हाथ फेरते-फेरते वे अपना हाथ मेरी छातीपर फेरने लगे और छातीपर हाथ फेरनेका प्रभाव यह था कि वह दर्द न जाने कहाँ गायब हो गया। अब मैं अपनेको पूर्ण स्वस्थ अनुभव करने लगा। उसी समय मैंने श्रद्धेय बाबूजीसे कहा— हाँ बाबूजी, आपकी बात मैं समझ रहा हूँ और अब कन्या-दान हम दोनों ही करेंगे।

जब विवाहका सारा कार्य हो गया, जब सब आये हुए अतिथि चले गये और जब घरके शान्त वातावरणमें इस प्रसंगकी ओर ध्यान गया तो मैं मन-ही-मन श्रद्धेय बाबूजीके श्रीचरणोंको प्रणाम करने लगा, जिन्होंने अपनी अहैतुकी कृपासे वैवाहिक कार्यको सम्पन्न करनेके लिये मुझे स्वस्थ बना दिया था।

विवाहके पहले हमारे समाजमें एक नेग 'झोल' डालनेका होता है। विवाहके मण्डपमें बैठनेके पूर्व वस्त्र-आभूषण-पुष्पहारसे कन्याको सुसज्जित-समलंकृत किया जाता है। समलंकरणसे पूर्व विशिष्ट रीतिसे कन्याको स्नान करवाया जाता है। स्नान करवानेकी यह प्रक्रिया लम्बी होती है। इस प्रक्रियाकी शृंखलाके मध्यमें झोल डालनेका क्रम आता है। शास्त्रोंमें नारीके षोडश शृंगारका वर्णन आता है। झोल डालनेको षोडश शृंगारके मध्यकी एक कड़ीके रूपमें समझना चाहिये। झोल एक प्रकारका गाढ़ा द्रव पदार्थ होता है, जो दूध, दही, घी, केशर, इत्र, गुलाबजल आदि कई वस्तुओंके मिश्रणसे बनाया जाता है। इस झोलको कन्याके पिता कन्याके शीशपर डालते जाते हैं और माता उसको मसलती जाती है। जब झोलके नेगकी बात आयी तो मैंने पुनः श्रद्धेय बाबूजीसे बालहठ किया— झोलका नेग तो आपको ही करना होगा।

बाबूजीने कहा— तुम तो बात-बातमें बचपना करते हो। कहीं ऐसा भी किया जाता है? यह नेग माँ-बाप ही करते हैं, सो तुमको ही करना चाहिये।

मैंने बड़े आग्रहपूर्वक कहा— कम-से-कम यह तो कर ही दें। कन्यादान वाली बात तो मैंने आपकी मान ली, पर यह नेग तो आपके ही द्वारा होना चाहिये।

श्रद्धेय बाबूजी समझाते हुए मुझसे कहने लगे— अच्छा, मैं तुम्हारी बात मान लेता, पर यह कैसे हो सकता है? सावित्रीकी माँ तो बीमार है। वह तो यहाँ है ही नहीं। उसके बिना तो यह काम हो ही नहीं सकता।

पूज्या माँ श्रद्धेय बाबूजीके साथ ही ऋषिकेशसे यहाँ कलकत्ते आयी थीं, पर वे अस्वस्थ थीं, अतः अलीपुरकी कोठीमें, जहाँ वे लोग ठहरे थे, वहीं रह गयीं और हमारे घर नहीं आ सकी थीं।

पूज्या माँकी अनुपस्थितिके कारण यह नेगचार श्रद्धेय बाबूजीके द्वारा होना सम्भव ही नहीं था और उनके इस प्रश्नका मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। मैं तो मूक खड़ा था, तभी परम सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमिया बोल पड़े— भाईजी ! यदि आपको आपत्ति नहीं हो तो माँके स्थानपर मैं खड़ा हो जाऊँ।

सम्मान्य श्रीडालमियाजीके कथनको सुनकर मैं तो अवाक् था। यह कार्य ऐसा था जो प्रतिनिधिके द्वारा होना ही नहीं था। इसे तो पूज्या माँकी उपस्थितिमें ही होना चाहिये था। श्रद्धेय बाबूजी यदि चाहते तो साफ-साफ इंकार कर सकते थे, पर उन्हें तो मेरा मन रखना था। तत्सुख-सुखी भावके साकार स्वरूप श्रद्धेय बाबूजीने कहा— मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है, पर परमानन्दसे पूछ लो।

मैंने तुरन्त कहा— इसमें भला आपत्ति ? सच तो यह है कि यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी।

बस, बात तय हो गयी। झोल डालनेवाला नेग श्रद्धेय बाबूजीके द्वारा पूर्ण हुआ। पूज्या माँके स्थानको ग्रहण किया श्रीडालमियाजीने। पितृस्थानीय श्रद्धेय बाबूजीके कर-कमलोंमें झोलका पात्र दिया गया। वे पात्रसे सुगंधित झोल सौभाग्याकांक्षिणी निर्मलके शीशपर डाल रहे थे और मातृस्थानीय श्रीडालमियाजी अपने कर-पल्लवसे झोलको मसल रहे थे। इस दृश्यके कई छाया-चित्र लिये गये। सारा उपस्थित समुदाय इस छविको देख-देख करके आनन्दित और विस्मित हो रहा था। जन-जनका अन्तर सुपुत्री निर्मलके सौभाग्यकी सराहना कर रहा था। इस नेगचारके पूर्ण हो जानेके बाद न जाने कितने व्यक्तियोंसे मुझे बधाई और सराहना मिली।

[६] प्यारकी वर्षा

यह बात उस समयकी है, जब श्रद्धेय बाबूजी काफी अस्वस्थ रहने लग गये थे। उनकी बीमारीका चिन्ताजनक हाल सुनकर मैं कलकत्तेसे गोरखपुर आ जाता था और उनकी तबीयतमें कुछ सुधार देखकर मैं वापस कलकत्ते चला जाता था। इस प्रकार उनके दर्शनके लिये कई बार आना-जाना हुआ। फरवरी १९७१ में जब मैं गोरखपुर आया, तब बाबूजीकी तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब चल रही थी। मैं कई दिन रहा, पर उनसे कोई बात नहीं हो पायी। उनकी बीमारीको देखकर मैंने भी उनके पास जानेका प्रयास नहीं किया, भले ही उनके समीप बैठनेकी मनमें बड़ी ललक थी।

अचानक कोई ऐसा पारिवारिक कार्य मेरे सामने आ खड़ा हुआ कि जिससे कलकत्ता जाना जरूरी हो गया। गीतावाटिकासे प्रस्थान करनेके पूर्व प्रणाम करनेके लिये मैं बाबूजीके पास गया। कमरेमें बाबूजी पलंगपर लेटे हुए थे और पास ही पूज्या मैया बैठी हुई थीं। मुझे आता देखकर बाबूजी पलंगपर बैठने लगे तो मैयाने कहा— आप क्यों उठ रहे हैं ? तबीयत ठीक नहीं है। आप लेटे रहिये।

बैठनेके लिये उठते हुए बाबूजी बोले— इसे आये हुए कई दिन हो गये, पर अभीतक मैंने इससे कुछ बात नहीं की। अब यह घर जा रहा है। क्या अब भी इससे बात न करूँ ?

वे एकदम स्वस्थ व्यक्तिकी तरह बैठ गये। उस समय ऐसा लगता था जैसे वे पूर्ण स्वस्थ हों। जब मैं प्रणाम करनेके लिये झुका तो उन्होंने मेरा सिर अपने छातीसे चिपका लिया और

बार-बार सिरपर, पीठपर हाथ फेरते हुए कहने लगे— बेटा! तुम कोई चिन्ता नहीं करना। परिवारपर यह जो बदली छायी है, वह शीघ्र छँट जायेगी। बहुत अच्छे दिन आयेंगे। तुम बहुत सुखसे रहोगे।

वे गद्गद स्वरमें कहते जाते थे और प्यारसे मेरे सिरको और पीठको सहलाते जाते थे। मैं समझ नहीं पा रहा था कि आज बाबूजीको हो क्या गया है। वात्सल्य तो उनका मेरे ऊपर सदासे ही बहुत था और है, पर आज उस वात्सल्यमें इतना ज्वार कैसे आ गया? आज बाबूजी इतना अधिक कैसे उमड़ रहे हैं? जैसे गाय अपने नवजात बछड़ेको चाटती रहती है, उसी तरहसे सहलाते हुए वे मुझपर अपने प्यारकी वर्षा कर रहे थे। मुझे क्या पता था कि यह मेरी उनसे अन्तिम भेंट है। मैं उनका प्यार पाकर निहाल हो गया। उनका प्यार आज भी उसी तरह मेरे रोम-रोममें, मेरे कण-कणमें समाया हुआ है।

ऊपर वर्णित अनेक प्रसंगोंके माध्यमसे मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि श्रद्धेय बाबूजीने यदि किसीको मित्र माना तो उसे हृदयसे मान लिया और मित्रताको निभाया तो वह हर सम्भव रीतिसे निभाया। जब-जब यह भाव मनमें उदित होता है कि मैं श्रद्धेय बाबूजीके अभिन्न मित्र श्रीज्वालाप्रसादजीका पौत्र हूँ तो हृदय आह्लादसे भर जाता है। मैं तो भगवानसे यही प्रार्थना करता हूँ मेरा सम्पूर्ण जीवन श्रद्धेय बाबूजीकी रुचिके अनुकूल बन जाय। ■

श्रीदूलीचन्दजी दुजारी

[१] उन्हींका पाला-पोसा

मैं एकदम अनाथावस्थामें पूज्य बाबूजीके पास आया था। पिताकी मृत्यु मेरे बचपनमें ही हो गयी थी। चाचाजी (श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी) ने पढ़ाया और वे ही मुझे पूज्य बाबूजीके सम्पर्कमें लाये। 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें काम करता था, अतः पूज्य बाबूजीकी सेवाका पूरा मौका मुझे मिलता था। उन्होंने भी अपना पूरा स्नेह मुझे दिया। अपने परिवारके सदस्यकी भाँति ही वे मुझे समझते थे। मेरा उनसे सम्बन्ध क्या था, कह नहीं सकता, क्यों कि वे ही मेरे सब कुछ थे। पूज्य बाबूजी हमेशा 'भैया' कहकर पुकारते थे। इन दो अक्षरके सम्बोधनमें इतना प्यार भरा रहता था कि सुनकर मन एकदम गद्गद हो उठता था। मैं भी उनका आश्रय एवं प्यार पाकर अपने सभी दुःखोंको भूल गया था। मैं खुद तो क्या, मेरे बच्चे भी उन्हींकी छत्रछायामें पले हैं। मेरी तो सामर्थ्य ही क्या थी, पर उन्हींकी कृपासे आज सभी बच्चे योग्य हो गये हैं। उनके रहते मैंने किसी कामकी चिन्ता नहीं की। उन्हींकी कृपासे सभी कार्य सानन्द सम्पन्न होते आये हैं। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे ऐसा आश्रयदाता मिला। बहुत विश्वास था उनका मुझपर।

सन् १९६२ में मेरे सिरपर काफी जोरकी चोट लगी थी। बचनेकी कोई आशा न थी। सभी आशा छोड़ चुके थे, पर शायद कुछ दिन उनकी सेवा करनेका सौभाग्य और प्राप्त होना था और पूज्य बाबूजीको भी मेरा अभाव सह्य न था, इसीलिये उन्होंने मुझे जीवनदान दिया। इससे बढ़कर और क्या कृपा हो सकती है? यहाँतक कि जीवनके अन्तिम दिनोंमें, जब कि उनकी हालत काफी खराब थी, तब भी उन्होंने मुझे याद किया।

क्या कहूँ, मैं तो उन्हींका पाला-पोसा हूँ।

[२] असहायको आश्रय

बात सन् १९२९ की है। पूज्य बाबूजी उन दिनों गोरखपुर शहरके उत्तरी भागमें रेलवे इंजन-शेडके समीप स्थित एक बगीचेमें रहते थे। यह बगीचा श्रीकान्तिबाबूका था और पूज्य बाबूजीने इसे किरायेपर ले रखा था। उन दिनों पूज्य बाबूजीपर भगवानकी कृपाकी वर्षा हो रही थी। भगवत्कृपाके विलक्षण प्रसंग उस बगीचेमें घटित होनेके कारण पूज्य बाबूजीके प्रति स्नेह-सद्भाव रखनेवाले स्थानीय जालान परिवारके एक बन्धुने वह बगीचा श्रीकान्तिबाबूसे खरीद लिया। उस बगीचेको खरीदनेमें उनकी आन्तरिक अभिलाषा यही थी कि पूज्य बाबूजी वहाँ बराबर रहें और उनकी उपस्थितिसे उसका महत्त्व बढ़ता चला जाय, परंतु दैवका कुछ और ही विधान था। *'तेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और'*।

उन दिनों गोरखपुर शहरमें बहुधा प्लेगका प्रकोप हो जाता था। उस वर्ष भी प्लेगका प्रकोप हुआ। शहरके लोग अपने घर खाली करके शहरके बाहरी क्षेत्रोंमें जाकर रहने लगे।

निर्धनता बड़ी क्रूर होती। शहरके प्रसिद्ध साहबगंज मुहल्लेमें रहनेवाला एक निर्धन मारवाड़ी ब्राह्मण, जिसका नाम बनारसी था, प्लेगकी चपेटमें आया और ठीकसे उपचार न होनेके कारण चल बसा। उसकी अनाथा स्त्री और बच्चे प्लेगका प्रकोप देखकर पहलेसे ही आतंकित थे, अपने पति-पिताको प्लेगका ग्रास होते देखकर तो वे और भी भयभीत हो गये। अब वे घर छोड़कर शहरके बाहर कहीं शरण लेनेके लिये व्यग्र हो गये, किंतु निर्धनको कौन आश्रय दे? ऐसे भीषण समयमें जब सभी 'शरणार्थी' बने हुए थे, कौन उनकी व्यवस्था करे? ब्राह्मणपत्नीको किसीने पूज्य बाबूजीकी शरण ग्रहण करनेके लिये प्रेरित किया। ब्राह्मणपत्नी पूज्य बाबूजीसे मिली और पूज्य बाबूजीने उसे अपने आवास-स्थान, अर्थात् उसी किरायेके बगीचेमें आकर रहनेके लिये कह दिया।

बगीचेके मालिक जालान-बन्धु भी साहबगंज मुहल्लेमें रहते थे। प्लेगके प्रकोपको देखकर वे भी बगीचेके उस हिस्सेमें जाकर रहने लगे थे, जो हिस्सा पूज्य बाबूजीके किरायेमें नहीं था। जालान-बन्धुको जब यह बात ज्ञात हुई कि बनारसी ब्राह्मणकी विधवा पत्नी और बच्चोंको पूज्य बाबूजी अपने हिस्सेके कमरोंमें लाकर ठहरा रहे हैं, तब वे भयभीत हो गये। जिस परिवारमें प्लेगके प्रकोपसे एक व्यक्तिकी मृत्यु हुई है, उसे अपने साथ शरण देना जालान-बन्धुको निरापद प्रतीत नहीं हुआ। मौतकी आशंकासे उनका हृदय काँप उठा। उन्होंने पूज्य बाबूजीसे प्रार्थना की— उस ब्राह्मण परिवारको बगीचेमें शरण नहीं देनी चाहिये। हमलोग भी सपरिवार रहने लगे हैं। ब्राह्मणकी मृत्यु प्लेगसे हुई है, अतएव उसके परिवारवालोंके साथ रहनेमें सभीको प्लेग हो जानेका भय है।

पूज्य बाबूजीने उन बन्धुकी बात सुन ली और उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया— उस असहाय परिवारको शरण देना हमलोगोंका कर्तव्य है। किसी घरका एक व्यक्ति यदि प्लेगसे मर जाय तो क्या उसके अन्य सदस्योंसे भी प्लेग हो जानेका भय रहना चाहिये? जब रोगका प्रकोप हो रहा है, उस समय बिना किसी भेद-भाव अथवा अन्यथा विचारके अपनी शक्तिभर लोगोंको शरण देनी चाहिये।

पूज्य बाबूजीकी इस सीखका कुछ भी प्रभाव जालान-बन्धुपर नहीं पड़ा। वे किसी भी हालतमें अनाथ ब्राह्मण परिवारका बगीचीमें रहना स्वीकार नहीं कर सके। आत्मरक्षाकी चिन्तामें उन्होंने पूज्य बाबूजीके प्रति अपने प्यार और सद्भावको भी कोई महत्त्व नहीं दिया।

पूज्य बाबूजीको जालान-बन्धुकी यह हठधर्मी एवं भय सर्वथा अनुचित प्रतीत हुए। उन्होंने जालान-बन्धुको स्पष्ट कह दिया— बगीचेमें मैं रहूँगा तो ब्राह्मण-परिवार भी रहेगा। यदि ब्राह्मण परिवारको बगीचेमें शरण नहीं मिलेगी तो मैं भी इस बगीचेमें नहीं रहूँगा।

पूज्य बाबूजीके इतना कहनेपर भी जालान-बन्धुने अपना निश्चय नहीं बदला। उधर पूज्य बाबूजी अपनी कर्तव्य-भावनापर अडिग थे। परिणामस्वरूप उन्होंने जल्दी ही श्रीगोरखनाथ-मन्दिरके उत्तरकी ओर श्रीबालमुकुन्दजी गुप्तका बगीचा किरायेपर ले लिया और उसमें स्थानान्तरित हो गये। पीछे जब पूज्य बाबूजी बगीचा छोड़कर जाने लगे, तब जालान-बन्धुको अपनी हठधर्मीपर बड़ा विचार हुआ, किन्तु पूज्य बाबूजी उनके उस आग्रहको मान नहीं सके।

[३] अड़े सँवारे काम

बात बहुत पुरानी है। परम पूज्य श्रीमदनमोहनजी मालवीयके सुपुत्र श्रीकृष्णकान्त मालवीय इलाहाबादके नैनी जेलमें राजनैतिक बन्दी थे। अधिकारियोंके आदेशसे उनकी बदली बस्ती जेलमें हो गयी। उन्हें नैनीसे गोरखपुर होकर बस्ती ले जाया जा रहा था। उन्होंने श्रीबाबूजीके नाम एक तार दिया, जिसमें लिखा था— आज सन्ध्या सात बजेकी ट्रेनसे दस आदमियों सहित गोरखपुर स्टेशन पहुँच रहा हूँ। आप भोजनका प्रबन्ध करवा दें।

पूज्य बाबूजी उन दिनों गोरखनाथके समीप एक बगीचेमें रहते थे। तार प्रातः दस बजे गीताप्रेस पहुँचा, पर गीताप्रेसके व्यवस्थापक महोदयने सायंकाल छः बजेके बाद वह तार पूज्य बाबूजीको दिया। उसे पढ़कर वे बहुत चिन्तित हुये। प्रेसवालोंकी उपेक्षा वृत्तिके प्रति उनके मनमें बड़ा खेद हुआ कि न उन्होंने भोजनकी स्वयं व्यवस्था की और न उन्होंने समयसे तार मेरे पास भिजवाया। अब समय केवल आधा घंटा रह गया था। किंकर्तव्य-विमूढ़ पूज्य बाबूजी चिन्तामें डूबे हुए थे। इतना समय रह नहीं गया था कि पूड़ी-शाक बनवा लिया जाता और यदि किसी प्रकार बन भी जाय तो फिर सवारीका प्रश्न कैसे हल हो? नगरमें जाकर कोई ताँगा लेकर बगीचीमें आये और बगीचीसे भोजनका सामान स्टेशन पहुँचे, अब ट्रेनमें इतना समय नहीं रह गया था। परिस्थितिसे विवश पूज्य बाबूजी एकान्त मनसे भगवानका स्मरण करने लगे।

इतनेमें उन्होंने एक सज्जनको मिठाई, पूरी, सब्जी तथा फलोंकी टोकरियोंसे लदे हुए इक्केको आते हुए देखा। उक्त सज्जनने आते ही कहा— . . . . . के यहाँ लड़केका आज विवाह है। उन्होंने आपके लिये मिठाई-फल आदि भेजे हैं।

भगवानके द्वारा समयपर हुई व्यवस्थाको देखकर पूज्य बाबूजी आश्चर्यपूर्ण प्रसन्नतासे विभोर हो गये। उन्होंने इक्केवालेको रोक लिया। तुरन्त अपने दो-तीन साथियोंको सब सामानसहित उसी इक्केसे स्टेशन भेज दिया। सामान इतना अधिक था कि श्रीकृष्णकान्तजी तथा उनके सब साथियोंने पूर्ण तृप्तिके साथ भोजन किया। पीछे इस घटनाका उल्लेख करते हुए पूज्य बाबूजी कहा करते थे— भगवानने भोजनका सामान ही नहीं भेजा, सवारीके लिये इक्का भी भेज दिया,

अन्यथा जहाँ मैं रहता था, वहाँसे काफी दूर पैदल चलनेपर इक्का मिलता था। इतने अल्प समयमें स्टेशन पहुँचनेकी व्यवस्था होनी असम्भव थी। श्रीसूरदासजीने सर्वथा सत्य लिखा है—

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूँ संतन की अड़े सँवारे काम॥

[४] विश्वसनीय व्यक्तित्व

कई वर्ष पहलेकी बात है। राजस्थानमें भीषण अकाल था। गौओंकी बड़ी दुर्दशा थी। उस समय राजस्थानमें स्थान-स्थानपर सहायताका काम हो रहा था। रतनगढ़में पूज्य बाबूजी वह काम देख रहे थे। वे एक दिन दोपहरको अपनी बैठकमें अकेले बैठे डाक देख रहे थे कि वहींके एक सज्जन आये। वे बहुत सम्पन्न थे, उनका बंगालमें बड़ा कारोबार था, बड़े दानी थे, पर वे अपने लिये व्यय करनेमें बड़े अनुदार थे। घुटनों तक की धोती, एक कमरी तथा सिरपर पगड़ी, जाड़ेमें एक बीकानेरी कम्बल, यही उनकी पोशाक थी। वे रिश्तेमें पूज्य बाबूजीके मामा लगते थे। उनके आनेपर पूज्य बाबूजीने प्रणाम करके आनेका कारण पूछा। उनके हाथमें एक कागजका छोटा-सा पुलिंदा था, उसे पूज्य बाबूजीके हाथमें देते हुए बोले— ले भैया! ये दस हजार रुपयेके नोट हैं, इस समय तू अकेला मिलेगा, इसीसे दुपहरीमें आया हूँ। इनको गायोंकी सेवामें लगा देना। पर देखना, कहीं मेरा नाम न आने पाये। भगवानकी सेवामें लगे, इसमें देनेवाले किसी दूसरेका नाम क्यों आना चाहिये?

उन दस हजार रुपयोंको आज एक-सवा लाखसे अधिक ही समझना चाहिये। पूज्य बाबूजीने मुस्कुराते हुए नोट ले लिये। वे जानते थे मामाजीके स्वभावको।

पूज्य बाबूजीका व्यक्तित्व इतना अधिक विश्वसनीय था कि न जाने कितने लोग अपने गुप्त दानका कार्य बाबूजीके माध्यमसे करवाया करते थे।

[५] स्नेहका सच्चा सम्मान

पूज्य बाबूजीकी आत्मीयता प्रसिद्ध है। जो भी, किसी भी हेतुसे, उनके सम्पर्कमें आया, वह सदाके लिये उनका हो गया तथा समय और स्थानकी दूरीसे फिर उस आत्मीयतामें कभी कोई बाधा या न्यूनता नहीं आयी। सच्ची आत्मीयता तो आत्मीयताकी ही सृष्टि करती है। यही हेतु है कि सभी लोगोंसे पूज्य बाबूजीको सच्चा स्नेह प्राप्त हुआ। गोरखपुर बाबूजीका कार्यक्षेत्र रहा है, अतएव यहाँके नागरिकोंके लिये पूज्य बाबूजी परिवारके एक गुरुजनके रूपमें समादृत रहे हैं।

पूज्य बाबूजीका जीवन आरम्भसे ही बड़ा क्रियाशील था। दिन-रातमें वे अधिक-से-अधिक चार-साढ़े चार घंटे विश्राम करते थे। इस व्यस्तताका प्रभाव शरीरपर होना स्वाभाविक था। शरीर प्रायः अस्वस्थ रहने लगा, पर अस्वस्थताकी भी कुछ परवा किये बिना ही पूज्य बाबूजी कार्यमें जुटे रहते थे। हाँ, शरीर-धर्मके नाते वे शुद्ध औषधिका प्रयोग करते थे। गोरखपुरके सभी डाक्टर एवं वैद्योंसे पूज्य बाबूजीकी बड़ी ही घनिष्ठता थी और तनिक-सा संकेत पाते ही डाक्टर-वैद्य उन्हें देखनेके लिये उपस्थित हो जाते थे। इसमें वे अपना अहोभाग्य मानते थे कि पूज्य बाबूजी

जैसे संत-जीवनकी सेवाके लिये उनके औषधि-ज्ञानका यत्किंचित् उपयोग हुआ, पर पूज्य बाबूजीका स्वभाव था, अपितु नियम-सा था कि जिनका जो व्यवसाय (PROFESSION) है, उनकी उस सेवाको मुफ्त नहीं लेना है। जिनके लिये चिकित्साका पेशा आजीविकाका साधन है, उन्हें उसके लिये उचित पारिश्रमिक देकर ही सेवा लेनी चाहिये। अपने इस नियमके अनुसार अपने यहाँ आनेवाले सभी सम्मान्य चिकित्सक महानुभावोंसे पूज्य बाबूजीने यह समझौता कर लिया था कि वे उन्हें जो दें, वह उन्हें लेना होगा। जो-जो चिकित्सक महानुभाव पूज्य बाबूजीके इस आग्रहको माननेमें अपनेको विवश पाते थे, पूज्य बाबूजी आवश्यक होनेपर भी अपने उपचारके लिये उन्हें बुलानेमें संकोच करते थे। वैसे प्रेमके नाते पूज्य बाबूजीके दर्शनार्थ वे लोग आते ही रहते थे।

सन् १९५१ की बात है। पूज्य बाबूजीके हृदयमें थोड़ी पीड़ा रहने लगी। कई महीने कष्ट रहा। स्थानीय सरकारी अस्पतालके सिविल सर्जन कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजी बड़े ही अनुभवी तथा निपुण डाक्टर थे। अनेकों सांघातिक अवस्थाओंमें उनके उपचारसे लोगोंको प्राणदान मिला था। परिवारवाले तथा मित्रोंने पूज्य बाबूजीके सामने कई बार आग्रहपूर्ण प्रस्ताव रखा कि कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको भी देखनेके लिये बुलाया जाय, पर पूज्य बाबूजीको ज्ञान था कि कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजी उनके यहाँसे फीस स्वीकार नहीं करते, अतएव पूज्य बाबूजीने सभी लोगोंके आग्रहको सुनकर भी कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको बुलाना स्वीकार नहीं किया। पूज्य बाबूजीकी अस्वस्थताकी बात छिपनेवाली चीज नहीं थी। कुछ दिनोंमें कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको भी पता चल गया कि पूज्य बाबूजी बीमार हैं। वे बिना बुलाये ही पूज्य बाबूजीके निवास-स्थानपर पहुँच गये और पूज्य बाबूजीको वन्दन करनेके पश्चात् अत्यन्त स्नेहपूर्वक उपालम्भके स्वरमें कहने लगे— भाईजी! आपने मुझे अपनी बीमारीकी सूचनातक नहीं दी, क्या आपने डाक्टर राजेन्द्रप्रसादको मरा हुआ मान लिया था?

डाक्टर साहबके इन आत्मीयता भरे शब्दोंको सुनते ही श्रीभाईजीका हृदय भर आया, आँखें भर आयीं और वे बहुत ही संकोचभरे शब्दोंमें बोले— डाक्टर साहब! यह मेरी भूल है, पर क्या करूँ? यह मेरे स्वभावका दोष है। स्वजन लोग मुझे बहुत समझाते हैं, किन्तु मैं अपने स्वभावदोषको नहीं सुधार पाता। इसीसे आपको सूचना नहीं दी।

ऐसे लाचारीके प्रसंगपर भी अपने संकोची स्वभावका निर्वाह करनेकी पूज्य बाबूजीकी दृढ़ताको देखकर डाक्टर साहब गद्‌गद हो गये। उन्होंने बड़े ही स्नेहसे बहुत देरतक पूज्य बाबूजीका निरीक्षण किया एवं उपचारके सम्बन्धमें कई प्रकारके सुझाव दिये।

डाक्टर साहबके लौट जानेपर पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा— *डाक्टर साहबके स्नेहको देखकर मेरा हृदय भर आया। ऐसे सच्चे स्नेही कहाँ मिलते हैं, पर किसीके स्नेहका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिये स्वजनको कष्ट देना ही क्या स्नेह है? स्नेही देनेका आग्रह करता रहे और अपने मनमें उससे लेनेका संकल्प ही उदित न हो, तब शोभा है। किसी दूसरेके लिये डाक्टर साहबकी सेवाकी आवश्यकता होती तो उन्हें बुलानेमें मुझे प्रसन्नता होती, पर अपने लिये बुलाना उनके स्नेहका दुरुपयोग है।*

सच्चे स्नेहका आदर्श रूप देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया।

[६] राष्ट्रपति श्रीराजेन्द्रबाबूको सही परामर्श

उत्तर प्रदेशकी विधान सभाके सामने गोभक्तोंने सत्याग्रह किया तो सम्माननीय श्रीपंतजीने पूज्य बाबूजीको वचन दिया कि गोबध-बन्दीका कानून उत्तर प्रदेशमें बन जायेगा। उत्तर प्रदेशमें तो कानून बन गया, पर केन्द्रीय सरकार सदा ही टालमटोल करती रही। केन्द्रमें कसाइयोंका कोई ऐसा प्रबल पक्षधर बैठा था, जो केन्द्रीय सरकारको अखिल भारतीय गोरक्षा कानून बनाने नहीं दे रहा था। केन्द्रीय सरकारके सामने जब-जब बात उठती, तब-तब इस विषयकी उपेक्षा कर दी जाती। *'गवार्थे ब्राह्मणार्थे च सद्यः प्राणान् परित्यजेत्'* जैसे सिद्धान्त-वाक्यसे प्रेरणा लेकर पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी गोरक्षार्थ अनशन करनेकी बात सोचने लगे। उन्होंने इस विषयमें पूज्य बाबूजीकी सम्मति जाननी चाही। पूज्य बाबूजीने ब्रह्मचारीजीको तत्काल तार दिया– अभी शीघ्रता न करें।

फिर पूज्य बाबूजीने तुरन्त तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको पत्र लिखा। श्रीराजेन्द्रबाबू पूज्य बाबूजीसे बड़ा स्नेह रखते थे। वे गोरक्षाके प्रबल पक्षपाती थे, कई गोरक्षा-सम्मेलनोंके वे सभापति बने और उन्होंने सरकारकी गोहत्या बंद न करनेपर बड़ी भर्त्सना की।

पूज्य बाबूजी बताते थे कि एक बार श्रीराजेन्द्रबाबूने कहा था– यदि मेरा वश चले तो इन सब सिनेमाघरोंको बंद कर दूँ।

कुछ दिनों बाद सिनेमा-तारिकाओंके संगमें उनका चित्र छपा, तब पूज्य बाबूजीने उनसे पूछा– आप तो सिनेमा बंद करनेकी बात करते थे, फिर सिनेमा-तारिकाओंके साथ अपना चित्र क्यों छपवाया ?

श्रीराजेन्द्रबाबूने हँसकर कहा– मेरे दो रूप हैं, एक राजेन्द्रप्रसाद, व्यक्तिगत स्तरपर और दूसरा राष्ट्रपति, शासकीय स्तरपर। यह चित्र राष्ट्रपतिका है, और वह मन्तव्य श्रीराजेन्द्रप्रसादका।

श्रीराजेन्द्रबाबूका पत्रोत्तर दि. २४ जनवरी १९५३ को पूज्य बाबूजीके पास आया राष्ट्रपतिके नाते, केन्द्रीयसरकारकी नीतिके अनुरूप, न कि अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं के अनुसार। जो पत्र पूज्य बाबूजीके पास आया, वह बहुत लम्बा था। उस पत्रका सार यह था कि कानूनके बजाय समाजमें ऐसे वातावरणका निर्माण करना चाहिये, जिससे गोरक्षा स्वतः हो। अधिकांश बार यही होता है कि गायोंके पंगु या वृद्ध या रुग्ण होनेके कारण अथवा गोपालककी निर्धनताके कारण गायें कसाइयोंके हाथों छल-पूर्वक बेच दी जाती हैं। अनशन करनेके स्थानपर ब्रह्मचारीजी यदि समाजके मानसको गोभक्तिपूर्ण बनानेमें अपने समय और शक्तिका उपयोग करें तो वे अधिक गो-सेवा कर सकते हैं।

राष्ट्रपतिके नाते लिखे गये उस लम्बे पत्रका छोटा-सा उत्तर जो पूज्य बाबूजीने उनको लिखा, वह इस प्रकार है।

गीताप्रेस, गोरखपुर
३० जनवरी १९५३

परम सम्मान्य और प्रिय श्रीबाबूजी!

सादर नमस्कार।

आपका २४ जनवरीका कृपा पत्र मिला। आपने कृपापूर्वक मेरे पत्रका तत्काल स्वयं लम्बा पत्र लिखकर उत्तर दिया, इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मेरे प्रति चिरकालसे आपकी जो अहैतुकी प्रीति, शुद्ध सद्भावना तथा आत्मीयता है, इसके लिये मैं आपका सदा ही ऋणी हूँ। आपका संदेश मैं श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके पास भेज रहा हूँ। वे क्या करेंगे, इसका निश्चित तो पता नहीं है, पर आशा है, वे फिलहाल आपकी बात मान लेंगे।

आपने पत्रमें जो कुछ विचार प्रकट किये हैं, वे सर्वथा स्तुत्य और विचारणीय हैं एवं उनके अनुसार गोसंवर्धन, नस्ल-सुधार, गोसेवा होनी ही चाहिये। गाय बेचनेवाले लोग छलसे स्वार्थवश कसाईके हाथ पगहा नहीं पकड़ा करके, पगहा जमीनपर रख देते हैं और कसाई भी गायका मूल्य बेचनेवालेके हाथमें न दे करके रुपये जमीनपर रख देता है, इस प्रकार कपटसे कसाईके हाथ गाय बेची जाय और इस रीतिसे आँख बचाकर गोवध हो या कराया जाय, इसमें संतोष माननेकी तो कल्पना ही नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष गोहत्या है, महापाप है। यह बंद होनी ही चाहिये।

परंतु साथ ही कानूनन सर्वथा गोवध बंद भी होना ही चाहिये। इसके बिना अच्छी गायोंका कटना बंद नहीं होगा। आपसे कई बार पहले भी बात हो चुकी है और आपने इस बातको स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया था, किंतु आप आवश्यकतासे अधिक साधु हैं। इसलिये स्पष्टवादी होनेपर भी कहीं-कहीं मित्रों तथा साथियोंके मनके विरुद्ध या सरकारकी नीतिके विपरीत कोई बात कहनेमें हिचक जाते हैं। अतएव मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि अब आपको साहसके साथ अपने मनकी बात स्पष्ट कह देनी चाहिये कि सरकारको कानूनन सर्वथा गोवध बंद करना होगा और इसके लिये उचित प्रयत्न भी करना चाहिये। आशा है मेरी प्रार्थनापर आप ध्यान देंगे और मैं धृष्टतापूर्ण जो शब्द लिख गया हूँ, यद्यपि आप जानते हैं कि ये सत्य हैं, उसके लिये मुझे कृपया क्षमा करेंगे।

आप स्वस्थ और सानन्द होंगे। शेष भगवत्कृपा।

विनीत
हनुमानप्रसाद पोद्दार

राष्ट्रपति-पीठासीन स्वजनको शालीन शब्दोंमें कितना सही परामर्श स्पष्ट रूपमें पूज्य बाबूजी दे सकते हैं, इसका ज्वलन्त उदाहरण ऊपरवाला पत्र है।

[७] दान-दाताकी भावना महत्त्वपूर्ण

सन् १९६८ के ग्रीष्म ऋतुकी बात है। पूज्य बाबूजी सत्संग हेतु स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) आये हुए थे। पूज्य बाबूजीका निवास डालमिया कोठीमें था और मैं बूबना भवनके एक कमरेमें ठहरा हुआ था। बूबना भवन डालमिया कोठीसे एकदम सटे हुए है।

सन् १९६६ के नवम्बर मासमें गोरक्षाके लिये जो अखिल-भारतीय आन्दोलन हुआ था, उसे एक बार स्थगित कर दिया गया था, जिससे सरकारको इस विषयपर सोचने-विचारने तथा लोगोंसे बातचीत करनेका कुछ अवसर मिल जाय, पर आन्दोलनका प्रभाव जन-मानसपर छाया हुआ था। आन्दोलनको सफल बनानेके लिये जन-जनने तन-मन-धनसे जो सहयोग दिया था, उसकी उस समय भी बड़ी सराहना हुई थी और वह आज भी सराहनीय है।

बूबना भवनके जिस कमरेमें मैं ठहरा हुआ था, उससे तीन-चार कमरे हटकर एक कमरेमें साँभरलेककी एक वृद्धा माताजी रहती थीं। वे जानती थीं कि मैं पूज्य बाबूजीका व्यक्ति हूँ। उन्होंने मुझे बुलाया तथा कहा— भइया! ये तीस रुपये लो और मेरी ओरसे भाईजीको देकर कहना कि इसे गोरक्षा आन्दोलनमें लगा दें।

उन रुपयोंको लेकर मैं पूज्य बाबूजीके पास गया और उन वृद्धा माताजीका परिचय देकर तथा प्रयोजन बताकर वे रुपये देने लगा। बाबूजीने कहा— तुम जाकर ये रुपये वापस कर आवो। उनसे कह देना कि इस समय आन्दोलन बन्द है, अतः ये रुपये कैसे लिये जा सकते हैं। यदि गोरक्षा आन्दोलन चल रहा होता तो मैं इन रुपयोंको ले लेता।

पूज्य बाबूजीकी आज्ञानुसार मैं माताजीके पास गया तथा बाबूजी द्वारा बताये गये कारणको बतलाकर रुपये वापस करने लगा। माताजीने उन रुपयोंको अपने हाथमें नहीं लिया। उन्होंने कहा— भइया! मैं इसे वापस नहीं लूँगी। मैं तो ये रुपये गायके लिये निकाल चुकी हूँ। तुम यह बात श्रीभाईजीसे कह दो।

मैं पुनः पूज्य बाबूजीके पास आया तथा माताजीका मन्तव्य पूज्य बाबूजीसे बता दिया। पूज्य बाबूजीने कहा— तुम एक बार फिर उनके पास जावो और पूछ लो कि क्या इन रुपयोंका प्रयोग किसी गोशालामें घासचारेके काममें किया जाये?

माताजीके पास जानेके लिये मैं डालमिया कोठीसे बाहर निकला, पर जाते-जाते यह भी सोच रहा था कि क्या पूज्य बाबूजी ऐसी छोटी-छोटी बातोंपर भी इतना अधिक ध्यान देते हैं कि सहायता करनेवाले अथवा दान देनेवालेकी भावनाके अनुसार ही कार्य होना चाहिये। मैंने माताजीसे ज्यों ही पूज्य बाबूजी वाली बात पूछी, उन्होंने तुरन्त अपनी सहमति प्रकट कर दी। उनकी सहमतिके मिल जानेपर पूज्य बाबूजीने उन रुपयोंको गोशालामें लगा देनेके लिये स्वीकार कर लिया। ■

श्रीव्रजकिशोरजी त्रिपाठी

हिन्दू नामके प्रति आस्था

नेहरू सरकार द्वारा अपनायी गयी धर्म-निरपेक्षिताकी नीतिकी ओटमें मुसलिम-तुष्टीकरण-भावनाको जितना प्रश्रय और पोषण मिला, उसको देखकर विस्मय होता है। पर-धर्म-सहिष्णुताके नामपर स्व-धर्म-निष्ठाकी अवहेलना, मात्र अवहेलना ही नहीं, अपितु अवगणना होनेका सबसे बड़ा प्रमाण यही है, सरकारको 'हिन्दू' शब्दके प्रयोगमें संकीर्णता एवं संकोचका अनुभव होने लगा और यही कारण है कि इन्दिरा सरकार वाराणसीके महान

शिक्षा-केन्द्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके नाममेंसे 'हिन्दू' शब्दको हटा देनेका विचार करने लगी। इतना ही नहीं, वह इस विचारको क्रियान्वित करनेके लिये प्रयत्नशील हो उठी। हिन्दुत्वके प्रति सरकारकी यह उपेक्षा हिन्दू-हृदयके लिये असह्य हो उठी। विश्वविद्यालयकी एक-एक ईंटमें 'का. हि. वि. वि.' अंकित है। क्या इन्दिरा सरकार द्वारा यह शक्य था कि ईंटमेंसे 'हि' को हटा दे, जो 'हिन्दू' शब्दका बोधक है? वास्तविक तथ्यका उपहास उड़ाती हुई सरकारने यह कहना आरम्भ कर दिया कि श्रीमालवीयजीने स्वेच्छासे नहीं, परेच्छासे हिन्दू शब्दको विश्वविद्यालयके नाममें स्थान दिया था। यह अप-प्रचार तो उन हिन्दुत्वाभिमानी मालवीयजीके हिन्दू-जीवनपर कीचड़ उछालनेके समान था, जिन्होंने वेदनाधिक्यमें अपने प्राण छोड़ दिये थे नोआखालीमें हिन्दुओंपर हुए भीषणात्याचारको देखकर।

सरकारकी इस हिन्दू-विरोधी नीतिका खुलकर विरोध हुआ और इस विरोधने एक आन्दोलनका रूप ले लिया। विद्यार्थी परिषदके कतिपय कार्यकर्ता श्रीभाईजीके पास पहुँचे आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये, जिससे उनके प्रयासमें सफलता मिले। श्रीभाईजीने तत्काल दिनांक ८-१-६६ को एक लिखित वक्तव्य दिया, जो इस प्रकार है।

वास्तवमें यह दुःखकी बात है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे 'हिन्दू' नाम हटानेकी बात चल रही है और किन्हींके द्वारा यहाँतक कहा जा रहा है कि महामना मालवीयजी महाराज 'हिन्दू' नाम नहीं रखना चाहते थे, अपितु श्रीएनीवेसेन्टके दबावसे उन्होंने 'हिन्दू' नाम रक्खा। पर यह सर्वथा असत्य और भ्रान्त धारणा है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये जब महामना मालवीयजी प्रयत्न कर रहे थे, उस समय मुझे उनके साथ रहनेका और कुछ काम करनेका अवसर मिला था। मैंने उस समय महामना मालवीयजीके विचारोंको बहुत निकटसे देखा था और मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि मालवीयजी स्वयं 'हिन्दू' नाम रखना चाहते थे और उन्होंने रक्खा। बल्कि सत्य तो यह है कि श्रीऐनीबेसेन्ट ही 'हिन्दू' नाम नहीं रखना चाहती थीं और महामना मालवीयजीके विशेष आग्रहसे ही 'हिन्दू' शब्द रक्खा गया। इस विषयमें लिखित प्रमाण भी थे, जो मेरे पास अभी नहीं है, पर खोजनेपर मिल सकते हैं। अतएव महामना मालवीयजी द्वारा स्थापित उनके प्राणोंकी प्रियतम वस्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे 'हिन्दू' शब्दको निकाल देना उनके प्रति अक्षम्य अपराध होगा और जहाँतक मैं समझता हूँ कोई भी सहृदय पुरुष और सरकार 'हिन्दू' नामको निकालनेका प्रयास नहीं करेगी। मालवीयजीका हिन्दुत्वसे अत्यन्त अनुराग था, हिन्दुत्वमें अत्यन्त विश्वास था और वे हिन्दू-धर्मके लिये जीवन धारण किये हुए थे। नोआखालीमें हिन्दुओंपर जो अत्याचार हुआ, इससे वे मर्माहत हुए और उनका अन्तिम लेख जो नोआखालीके सम्बन्धमें था, वह कल्याणके अक्टूबर, १९४६ के अंकमें पृष्ठ १३८९ पर 'महामना मालवीयजीका अन्तिम पूरा वक्तव्य' शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हो चुका है। इस लेखसे भी महामना मालवीयजीका हिन्दू-प्रेम स्पष्ट प्रकट हो रहा है।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक, कल्याण
गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीभाईजीके आशीर्वादसे कार्यकर्ताओंको बड़ा बल मिला। अब बड़े संतोषके साथ कहा जा सकता है कि प्रबल विरोधके फलस्वरूप इन्दिरा सरकार विश्वविद्यालयके नाममेंसे 'हिन्दू' शब्द

नहीं हटा सकी और आज भी उस महान शिक्षा-केन्द्रका नाम है ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय''। इस वक्तव्यसे स्पष्ट झलक रही है श्रीमालवीयजीके साथ-साथ श्रीभाईजीकी भी हिन्दू-भावना। हिन्दू धर्म, हिन्दू हित, हिन्दू गौरवके प्रति श्रीभाईजीकी जो आस्था है, वह सदा अभिनन्दनीय रहेगी। ■

श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी

[१] रचनाकी सहज प्रतिभा

पूज्य श्रीभाईजीका सदा प्रयास यही रहता था कि लोगोंके जीवनमें प्रभु-भक्तिकी प्रतिष्ठा हो। वे अपनी वाणीसे और अपनी लेखनीसे सदा ही प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया करते थे। न जाने कितने लोग उन्हें पत्र लिखा करते थे और उनका सदैव प्रयत्न रहा करता था सबको पत्र द्वारा उत्तर दे देनेका। मेरा भी उनसे पत्र-व्यवहार रहा है। जब-जब मैंने उनके पास पत्र लिखा है, प्रायः उनके पाससे उत्तर मेरे पास आया है। मुझे सबसे अधिक विस्मय एक बार यह देखकर हुआ कि मेरे पत्रका उत्तर उन्होंने कवितामें लिखकर दिया है। मैंने उनको एक पत्र अक्टूबर १९५९ में लिखा था। इसका उत्तर उन्होंने २२ अक्टूबर १९५९ को एक पदके रूपमें भेजा। पदको पढ़कर यह बात मेरी समझमें अच्छी प्रकार आ गयी कि इस पदमें मेरे पत्रका उत्तर है। इस उत्तरको पढ़कर मन तो आनन्दमें डूब ही गया, परंतु एक जिज्ञासा भी मनमें उभर आयी। उत्तर स्वरूप आये हुए इस पदकी रचना कब हुई? क्या किसी पूर्व रचित पदको ही उन्होंने पत्रके उत्तरमें लिख दिया अथवा पत्रको पढ़नेके बाद उत्तरमें लिखनेके लिये ही इसकी रचना हुई? वस्तुस्थितिका परिज्ञान प्राप्त करनेके लिये मैंने तत्काल श्रीभाईजीको पत्र लिख कर पूछा— आपने जो पद मेरे पत्रमें लिखा, वह कोई पूर्व रचना है अथवा मेरे पत्रके उत्तरमें ही उसकी रचना हुई?

मैंने पत्र तो भेज दिया, पर मेरे मनमें एक संदेह भी कार्य कर रहा था। लौकिक स्तरपर उनकी कार्य-व्यस्तता और लोकातीत स्तरपर उनकी भाव-निमग्नता, इन दो कारणोंसे पत्रोत्तर देनेमें यदि कुछ अधिक दिन व्यतीत हो गये तो वे यही लिख देंगे कि मुझे स्मरण नहीं है। यह संदेह मेरे मनमें था, किन्तु वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। मेरे पत्रका उत्तर उन्होंने ३० अक्टूबर १९५९ के पत्रमें दे दिया। पत्रमें उन्होंने लिखा था— मैंने उस दिन तुमको जो चार पंक्तियाँ लिखी थीं, वे पहलेकी बनी हुई नहीं थी। तुम्हारा पत्र पढ़कर उसके उत्तरमें जो लिखनेका भाव आया, वही उस समय लिखा। क्या लिखा था, मुझे याद नहीं है।

काव्य-रचनाकी यह सहज क्षमता देखकर मेरा मन उनके प्रति और भी विनत हो गया। मुझे स्मरण हो आया उनका एक पद्यात्मक पत्र, जो सन् १९४२ में 'कल्याण'में छपा था। एक साधकने अपना नाम न बतलाते हुए श्रीभाईजीको एक दर्द भरा पत्र लिखा। वह पत्र लिखा गया था पद्यात्मक। श्रीभाईजीने भी पद्यात्मक उत्तर लिखा और ठीक उसी प्रकारके छन्दमें। साधकने

अपना नाम-पता नहीं दिया था, अतः श्रीभाईजीने उस पद्यात्मक उत्तरको 'कल्याण'में प्रकाशित कर दिया। वह पद्यात्मक उत्तर भी अपने ढंगका एक ही है। मैं पहले सोचता था कि उस पद्यात्मक उत्तरको लिखनेमें श्रीभाईजीको बड़ा समय लगाना पड़ा होगा, किन्तु वैसा सोचना मेरा भ्रम था। जैसे श्रीभाईजीने मुझे लिखा, वैसे ही उनको भी सहज रूपमें लिख दिया होगा। इसी तरह मेरे अनेक मित्रोंको श्रीभाईजीने पत्र लिखे हैं और अनेक बार वे पद्यात्मक होते थे, विशेष रूपमें तब, जब वे अपनी स्थिति अथवा श्रीराधामाधवकी लीलाके बारेमें लिखते थे।

सन् १९६७ अथवा १९६८ की बात है। श्रीभाईजी स्वर्गाश्रम आये हुए थे। डालमिया कोठीमें उनका निवास था। कोठीमें नृसिंह जयन्ती मनायी जाने वाली थी। पूजनके लिये सारी तैयारी हो चुकी थी, केवल एक पद्यबद्ध आरतीकी आवश्यकता थी नीराजनके समय गायन करनेके लिये। कई पुस्तकोंके पन्ने उलटे गये, पर आरती नहीं मिली। यह बात श्रीभाईजीको बतलायी गयी। वे तुरन्त अपने कमरेमें गये और कुछ ही मिनटोंमें आरतीकी रचना करके ले आये। वस्तुतः पद्य-रचनाकी उनमें सहज प्रतिभा थी। उनके भावोंका प्रवाह पद्यके साँचेमें सहज ही ढल जाया करता था।

जब उनके पदोंका संग्रह 'पद रत्नाकर' गीताप्रेससे प्रकाशित हुआ, तब अनेक विशिष्ट साहित्यकारोंने आश्चर्य व्यक्त किया कि 'कल्याण' जैसी पत्रिकाके सम्पादन-कार्यमें अत्यधिक व्यस्त और प्रभु-भक्तिके प्रचार-कार्यमें सतत रत रहते हुए भी उनके द्वारा इतने विपुल परिमाणमें और ऐसे श्रेष्ठ स्तरकी काव्य रचना कैसे हो पायी? श्रीभाईजीकी पदरचनापर केवल साहित्यकार ही नहीं, संगीत-सम्राट श्रीविष्णु दिगम्बरजी पलुस्कर जैसे मूर्धन्य संगीतज्ञ भी रीझे हुए थे। पदोंके शब्द-लालित्य और भावमाधुर्यपर तो श्रीविष्णु दिगम्बरजी इतना अधिक रीझ गये थे कि उनकी ही भावनाके अनुसार श्रीभाईजीका पहला पद-संग्रह 'पत्र-पुष्प'के नामसे छपा था। प्रत्येक पदकी राग भी उन्होंने ही बैठायी थी।

पद्य-रचनाके साथ-साथ वे गद्य-लेखनमें भी नितान्त दक्ष थे। 'कल्याण' पत्रिकाके लिये लेख लिखनेमें तथा प्रकाशनार्थ आये हुए लेखोंका संशोधन करनेमें उन्हें विलम्ब नहीं लगता था। गद्य-लेखनकी इसी दक्षताके कारण उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण' पत्रिका जन-मानसपर छा गयी थी। एक ओर भाव और विचार तथा दूसरी ओर भाषा और शैली, इन दोनों दृष्टियोंसे प्रकाशित सामग्रीका स्तर इतना श्रेष्ठ होता था कि समाजमें कल्याणकी प्रतिष्ठा प्रकाश-स्तम्भके रूपमें हो गयी थी। लक्ष्यकी स्पष्टता, चिन्तनकी गम्भीरता और विचारोंकी उच्चताके कारण धर्म और साधनाके क्षेत्रमें कल्याण पत्रिकाको प्रमाण माना जाने लगा। श्रीभाईजीकी महान कृति 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' रस-साधना-राज्यकी एक अनुपम निधि है, जिसको मूर्धन्य विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे सराहा है।

सिद्ध संत होते हुए भी सिद्ध-हस्त लेखक और कवि होना उनके महान व्यक्तित्वका एक गौरव पूर्ण पक्ष है। अध्यात्मके शिखरपर सहज जीवन, विवेकका विचारोंमें सहज प्रकाश, धर्मके रक्षण हेतु सहज उत्सर्ग, रसके सिन्धुमें सहज निमग्नता और काव्यकी रचनामें सहज प्रतिभा उन्हें सहज ही प्रस्थापित कर देती है आदि शंकराचार्य एवं गोस्वामी श्रीतुलसीदास जैसे सिद्ध कवि संतोंकी पंक्तिमें।

[२] वह विशिष्ट विदाई

प्रसंग सन् १९६८ का है और स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) का है। पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ब्रह्मलीन होनेके पश्चात् पूज्य श्रीभाईजी प्रति वर्ष ग्रीष्मकालमें सत्संगके उद्देश्यसे स्वर्गाश्रम जाया करते थे। श्रीभाईजीके वहाँ रहनेसे एक ऐसा सात्त्विक वातावरण परिव्याप्त रहता था, जो बड़ा प्रेरणादायक होता था। मैं सत्संगका लाभ उठानेके लिये स्वर्गाश्रम आया हुआ था। जब कार्यालयसे प्राप्त छुट्टी समाप्तिपर आयी तो न चाहते हुए भी मुझे वापस जानेकी तैयारी करनी पड़ी। जिस दिन मैं कलकत्तेके लिये रवाना होने वाला था, उस दिनकी बात है। मैं प्रातः श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये डालमिया कोठी गया तो पता लगा कि आज जल्दी ही उन्होंने कमरेका दरवाजा बन्द कर लिया और वे चेतनावस्थामें नहीं हैं। भाव-सिन्धु-निमग्नताकी यह स्थिति उन दिनों उनके लिये साधारण बात थी। चाहे जब और चाहे जिस स्थितिमें उनकी बाह्य चेतना लुप्त हो जाती थी तथा भावसमाधिकी वह स्थिति कुछ मिनटोंसे लेकर पन्द्रह-बीस घंटे भी रह जाती थी। बहुत वर्षोंतक उन्होंने इस स्थितिको छिपाये रखा, पर जीवनके अन्तिम दस-बारह वर्षोंकी अवधिमें उनके प्राणाराध्यकी किसी दिव्य इच्छाके अनुसार वह दिव्य स्थिति जगतके सामने प्रकाशित हो गयी। उनके कमरेके द्वारको मैं प्रणाम करके लौट आया।

दोपहरके समय मैं फिर गया तो देखा कि श्रीभाईजी उसी प्रकार भाव-समाधिस्थ हैं। श्रीभाईजीकी प्रिय दौहित्री श्रीराधाबाईने मुझसे कहा— आज तो आप नहीं जा पायेंगे।

मैंने कहा— क्यों ?

वह बोली— नानाजीके दर्शन किये बिना आप कैसे जायेंगे और वे दरवाजा कब खोलेंगे, इसका पता नहीं, अतः आप अपनी बर्थका रिजर्वेशन कैंसिल करा दीजिये।

मैंने कहा— अभी तो आज जानेका ही विचार है।

मैं प्रतीक्षा करनेके उद्देश्यसे कमरेके बाहर बरामदेमें बैठ गया। बैठे-बैठे मैं सोच रहा था— यह भी कैसी अनिर्वचनीय स्थिति है। श्रीभाईजीकी अभिलाषा है और तदनुरूप प्रयास रहता है कि मेरी वृत्तियाँ जगतके सेवा-कार्योंमें लगी रहें, परंतु उनकी वृत्तियाँ बलात् पहुँच जाती हैं उस लीला राज्यमें। यह एक अद्भुत विवशता है। लीलासिन्धुमें उनकी वृत्तियोंके विलीन होनेके बाद जागतिक सेवाके सभी कार्य ज्यों-के-त्यों धरे ही रह जाते हैं। इस स्थितिको निकटवर्ती जनोंने भाव-समाधि कहना आरम्भ कर दिया। मैंने कई संतोंके जीवन-चरित्र पढ़े हैं, बहुत संतोंकी बातें सुनी हैं, कई संतोंके दर्शन भी किये हैं, पर ऐसा कहीं भी सुनने-देखनेमें नहीं आया कि कोई संत अपनी वृत्तियोंको जगतमें रखनेका प्रयास करे और संघर्षपूर्वक यहाँ लगानेपर भी बलात् लीलाराज्यमें जाकर भाव-समाधिस्थ हो जाये।

दोपहरसे अपराह्नकाल होनेको आया। कई घंटे प्रतीक्षा करनेके पश्चात् मैंने अपने छोटे भाई प्रिय श्रीहरिकृष्णको अपने पास बुलाया। वह कई वर्षोंसे श्रीभाईजीकी निजी सेवामें रहने लगा था। मैंने उससे पूछा— अब कैसे करना चाहिये ?

प्रिय हरिकृष्णने कहा— आज दरवाजा अन्दरसे बन्द है, अतः जब वे खोलेंगे, तभी दर्शन हो पायेगा और कोई उपाय नहीं है। आप ही सोच लें कि जाना कितना आवश्यक है। मेरा सुझाव है कि आप यहीं रहें। वे कभी भी दरवाजा खोल सकते हैं।

मैंने उससे कहा– छुट्टीके लिये तो कोई बात नहीं, पर कलकत्तेको जानेवाली एक ही ट्रेन देहरादून एक्सप्रेस है। उसमें भीड़ बहुत चलती है, अतः रिजर्वेशन दुबारा जल्दी नहीं मिल सकेगा और बिना रिजर्वेशन सपरिवार भीड़में जाना महा कठिन है।

मैं डालमिया कोठीसे गीताभवनके अपने कमरेमें आया और सामान आदि सब तैयार करके पुनः मैं और मेरी पत्नी श्रीभाईजीके दरवाजेके पास बैठ गये। मैं मन-ही-मन कुछ प्रार्थना भी करने लगा– आप यदि मेरी परीक्षा ले रहे हों तो मैं अनुत्तीर्ण हूँ ही, क्यों कि मैंने बाहरसे द्वारको प्रणाम करके जानेकी बात सोच ली है। आप अन्तर्यामी हैं, अतः आप मेरी झूठी या सच्ची इच्छाका स्वरूप जानते ही हैं। मेरी इच्छा है कि मैं आपका दर्शन करके और आपको प्रणाम करके जाऊँ। यदि दरवाजा खोलनेसे आपके इस रसावगाहनमें व्यवधान उपस्थित होता हो तब तो मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण उसमें व्यवधान आये, पर मनमें यह भाव बार-बार उठता है कि आपके द्वारसे कभी कोई निराश लौटा हो, ऐसा सुना नहीं।

जब मेरे रवाना होनेमें लगभग बीस मिनट बाकी रहे तो मैंने हरिकृष्णसे कहा– तुम मेरा सामान मेरे कमरेमेंसे यहाँ डालमिया कोठीके घाटपर ले आओ और मोटर-बोटके लिये चेष्टा करो कि अगली बार वह यहीं आ जाय। मैं पूरे समय यहाँ प्रतीक्षा करना चाहता हूँ।

वह तदनुसार व्यवस्था करनेके लिये चला गया। जब मेरे रवाना होनेमें पाँच मिनट शेष रहे तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। श्रीभाईजीके दरवाजेकी चटखनीके खोलनेकी आवाज मुझे सुनायी पड़ी। मैं और मेरी पत्नी दरवाजा खोलकर अन्दर चले गये और वहाँ देखा कि श्रीभाईजी नेत्र बन्द किये अपने आसनपर बैठ रहे हैं। जब वे बैठ गये तो मैंने चरणोंमें प्रणाम करके उनसे कहा– मैं आज जा रहा हूँ।

उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके नेत्र बन्द थे और उनका शरीर निश्चेष्ट था। इसी समय उनके अनन्य सेवक श्रीरामसनेहीजी आ गये। उन्होंने श्रीभाईजीसे कहा– जल पी लीजिये।

श्रीभाईजीने कोई उत्तर नहीं दिया। इस मई-जूनकी भयंकर गर्मीमें, कुछ खाने-पीनेकी बात तो दूर रही, उन्होंने सबेरेसे अपराह्णतक जल भी नहीं लिया था, अतः श्रीरामसनेहीजी चाहते थे कि वे जल पी लें, अन्यथा उनके अस्वस्थ हो जानेका भय है। उनके दुबारा कहे जानेपर भी श्रीभाईजीने कोई उत्तर नहीं दिया। वे उसी स्थितिमें निश्चेष्ट बैठे रहे। प्रायः रवाना होते समय श्रीभाईजी इलायचीका प्रसाद दिया करते थे। डब्बा उनके पास पड़ा था। मैंने हिम्मत करके उनसे कहा– थोड़ा इलायचीका प्रसाद दे दीजिये।

नेत्र बन्द थे, अतः वे हाथसे डिब्बेको टटोलने लगे। मैंने डिब्बा उनके हाथके पास कर दिया तो उसमेंसे थोड़ी इलायची निकालकर देने लगे। मेरा हाथ उन्हें दिखाई नहीं दे रहा था, अतः मैंने अपने हाथको उनके हाथके पास किया तो उन्होंने इलायची छोड़ दी। मेरा हृदय गद्गद हो गया। हमलोग प्रणाम करके बाहर आ गये। श्रीरामसनेहीजी भी बाहर आ गये, दरवाजा बाहरसे बन्द कर दिया गया। मैं इसे कृपावर्षा कहूँ या स्नेह-वर्षा ? मैं गद्गद हृदयसे डालमिया घाटपर आया और कलकत्तेके लिये रवाना हो गया। आज जब कभी भी अर्धचेतनावस्थामें उनके हाथसे मिली हुई वे इलायची और विदा होते समय उनकी वह भाव-निमग्न मुद्रा याद आती है तो मन विभोर हो जाता है।

[३] बिजलीकी घंटी

गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके कमरेके एकदम पास और सीढ़ीके ठीक ऊपर एक छोटा-सा केबिन था, जिसमें श्रीराधेश्यामजी बंका बैठकर अपना काम किया करते थे। इस केबिनमें जाते सम्पादकीय विभागके पत्र, कागज, फाइल, रजिस्टर आदि रखे रहते थे। जब कभी किसी कामके लिये श्रीभाईजीको बुलाना पड़ता था तो वे श्रीबंकाजीको आवाज देकर बुला लेते थे। कई स्वजनोंने सोचा कि एक बिजलीकी घंटी श्रीभाईजीके पास लगा दी जाय, जिससे उनको सुविधा हो जाय और जब आवश्यक हो, वे घंटीका बटन दबाकर श्रीबंकाजीको बुला लें।

स्वजनोंका मन रखनेके लिये श्रीभाईजीने अपनी ओरसे स्वीकृति दे दी और फिर उनके कमरेमें बिजलीकी घंटी लग गयी, पर उसका कभी उपयोग नहीं हुआ। हाँ, अपवाद स्वरूप उसका उपयोग हुआ दो बार। एक बार तो यह देखनेके लिये कि देखें, श्रीबंकाजी आते हैं या नहीं। श्रीभाईजीके पास प्रिय श्रीचन्द्रकान्त बैठा था। उसने बटनको दबाया और घंटी बज गयी। श्रीबंकाजी तत्काल श्रीभाईजीके पास गये। उनको देखकर प्रिय श्रीचन्द्रकान्तने कहा— हमने तो यों ही यह देखनेके लिये घंटी बजा दी थी कि देंखे, आप आते हैं या नहीं।

यह सुनकर श्रीबंकाजी विहसते हुए अपने केबिनमें वापस चले गये। दूसरी बार घंटी बजी एक विशेष परिस्थितिमें। एक बार प्रिय श्रीचन्द्रकान्त तथा श्रीभाईजी कमरेमें बैठे हुए थे। किसी बालकने खेल-खेलमें दरवाजेका कुंडा बाहरसे बन्द कर दिया। श्रीभाईजीको बाहर आना था, पर दरवाजा तो बन्द था। कुंडा खुलवानेके लिये प्रिय चन्द्रकान्तने बटन दबाकर घंटी बजायी और फिर श्रीबंकाजीने जाकर कुंडा खोला।

घंटी बजनेके केवल ये दो प्रसंग उल्लेखनीय हैं, पर श्रीभाईजीने अपने हाथसे कभी उसको काममें नहीं लिया। घंटी बजाकर किसी व्यक्तिको बुलाना, यह बात श्रीभाईजीको कभी रुचिकर लगी ही नहीं। इसमें उनको 'आफिशियलडम' और 'अफसरपने' की बू आती थी। श्रीभाईजीको वह व्यवहार पसन्द ही नहीं था, जिसपर कार्यालय-व्यवस्थाके नामपर कसावटपूर्ण अनुशासनकी छाया हो। वे तो उस वातावरणके पुजारी और पोषक थे, जिसमें पारिवारिक भावनासे उद्‌भूत सहजतापूर्ण आत्मीयता परिव्याप्त हो। यही कारण है कि घंटीके लग जानेके बाद भी उनको जब भी आवश्यकता होती, वे वहींसे बैठे-बैठे आवाज लगाकर श्रीबंकाजीको बुला लेते अथवा वे स्वयं उठकर केबिनके दरवाजेपर जा खड़े होते अथवा किसी व्यक्तिको भेजकर श्रीबंकाजीको बुलवा लेते, पर उन्होंने कभी घंटीका प्रयोग नहीं किया।

[४] आदेशका 'पालन'

भाई श्रीराधेश्यामजी बंकाकी चाह थी तथा तदनुसार प्रारम्भसे ही प्रयास था कि पूज्य श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें देशके गण्यमान लोगोंकी जो धारणा है, वह उन्हींकी लेखनीसे लिखवाकर लिखित रूपमें प्राप्त की जाय, जिससे उसका उपयोग भविष्यमें उचित समयपर किया जा सके। इसके लिये श्रीबंकाजीने अनेक लोगोंको व्यक्तिगत रूपसे पत्र लिखा। किसी सूत्रसे श्रीभाईजीको इस बातकी जानकारी हो गयी और यह भी पता चल गया कि जबलपुरके संसत्सदस्य तथा गीताप्रेसके प्रति श्रद्धा-भाव रखनेवाले सेठ श्रीगोविन्ददासजीके

पास भी पत्र लिखा गया है। श्रीगोविन्ददासजीको लिखनेसे निवारण करनेके लिये श्रीभाईजीने २७ सितम्बर १९७० को जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार है—

परम सम्मान्य

सादर नमस्कार।

मालूम हुआ है कि हमारे यहाँके श्रीराधेश्यामजी बंकाने मेरे सम्बन्धमें कुछ लिखनेके लिये आपसे निवेदन किया है। मेरे प्रति उनका सद्भाव है, वे मुझमें श्रद्धा रखते हैं, इसीलिये उन्होंने विशुद्ध भावुकतावश यह प्रयास किया है। परन्तु न तो मेरे जीवनमें ऐसा कोई गुण है, न कोई महत्त्व है, जिससे इस विषयमें आप सरीखे महानुभावोंका समय लिया जाय। सिद्धान्ततः भी मैंने जीवनभर आत्म-प्रशंसाका विरोध किया है। मनमें क्या है, सो तो भगवान जानें। आप सरीखे मुझपर अहैतुकी कृपा और स्नेह रखनेवाले आदरणीय महानुभाव यदि कुछ लिखेंगे तो आपका समय जायगा और मेरे लिये कोई लाभकी बात नहीं होगी। मैं तो आपसे यही आशीर्वाद और सद्भाव चाहता हूँ कि मान-प्रतिष्ठासे बचा रहकर जीवनभर भगवानका स्मरण कर सकूँ। आपका जो समय किसी बहुमूल्य लोकहितकर काममें लगता, उसे श्रीराधेश्यामजीने और मैंने पत्र लिखकर तुच्छ कार्यमें खोया, इसके लिये मैं करबद्ध क्षमा चाहता हूँ।

शेष भगवत्कृपा।

आपका विनीत
हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीभाईजी द्वारा लिखे गये पत्रमें जो आत्म-संगोपन एवं दैन्य-भाव है, वह उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्वके अनुरूप ही है। संतोचित विनम्रता पत्रकी एक-एक पंक्तिमें समायी हुई है। श्रीगोविन्ददासजीने श्रीभाईजीको क्या उत्तर दिया, वह तो ज्ञात नहीं, पर श्रीबंकाजीके पास उनका जो पत्र आया, वह भी पठनीय है। श्रीभाईजीके सम्बन्धमें अपनी धारणाको लिपिबद्ध करके वह लेख श्रीगोविन्ददासजीने भेजा और लेखके साथ आनेवाले पत्रमें उन्होंने लिखा—

राजा गोकुलदास महल
जबलपुर
दि: १५-१०-१९७०

प्रिय बंकाजी

आपका पत्र मिला। इधर मैं फ्लूमें पड़ा हूँ, अतः लेख भेजनेमें कुछ विलम्ब हो गया, क्षमा करें। बुखार हटते ही श्रद्धेय पोद्दारजीपर एक छोटासा लेख लिखा, जो इस पत्रके साथ आपकी सेवामें भेज रहा हूँ। इसका जहाँ उचित, समझें, उपयोग आप कर सकते हैं।

श्रद्धेय पोद्दारजीका एक पत्र मुझे इन दिनों मिला, जिसमें उन्होंने आपके पत्रका हवाला देकर उनपर कुछ न लिखनेका मुझे आदेश दिया। उसमें पोद्दारजीका वही आत्मगोपी और आत्म-प्रशंसाविरोधी भाव था। किन्तु इसमें आत्म-प्रशंसाकी तो कोई बात ही नहीं है। मनुष्य मात्र निमित्त ही तो है और जिस तरह निमित्त एक शब्द अथवा नाम है, उसी तरह व्यक्तिका नामोल्लेख एक साधन बन जाता है। इससे अधिक कुछ नहीं। इसी भावसे मैं श्रद्धेय पोद्दारजीकी

उस आज्ञाका पालन न कर सका और अपने भाव विचार अंकित कर भेज रहा हूँ। कृपया पहुँच दें।

भवदीय
गोविन्ददास

सेठ श्रीगोविन्ददासजीके पत्रने श्रीबंकाजीको तथ्य-संग्रहके प्रयासमें प्रोत्साहन ही दिया। इस प्रसंगके अन्तमें मैं इतना ही और कहना चाहूँगा कि श्रीभाईजीने अपना महान व्यक्तित्व जितना अधिक छिपाना चाहा, उस व्यक्तित्वकी महनीयता उतनी ही अधिक फैलती चली गयी।

श्रीहरिकृष्णजी दुजारी

[१] समत्व भावना

नित्यकी भाँति पूज्य बाबूजी गीतावाटिकाके पंडालमें प्रवचन देनेके लिये पधारने वाले थे। सभी लोगोंके बैठनेके लिये भूमिपर दरी बिछी हुई थी। शीत ऋतु होनेके कारण ठण्ड अधिक थी, अतः जहाँ सदा बैठकर पूज्य बाबूजी प्रवचन दिया करते थे, वहाँपर एक कम्बल चार पर्त करके बिछा दिया गया, जिससे उनपर जमीनकी ठण्डका प्रभाव न पड़े।

पूज्य बाबूजी प्रवचन देनेके लिये पंडालमें आये। उन्होंने देखा कि बैठनेकी जगहपर कम्बल बिछा हुआ है। पूज्य बाबूजीने वह कम्बल हटवा दिया। उन्हें बड़ा अप्रिय लग रहा था कि मैं अपने ही लोगोंके मध्य एक श्रेष्ठ आसनपर बैठूँ।

पूज्य बाबूजीने कम्बल तो हटवा दिया, पर हमलोगोंको चिन्ता हो रही थी शीतकी प्रबलताको देखकर। इससे उन्हें ठण्ड लग सकती है। फिर अगले दिन एक चतुराई की गई। कम्बल दरीके ऊपर न बिछा करके दरीके नीचे चार पर्त करके बिछा दिया गया। कम्बल दरीके नीचे होनेसे दिखलायी नहीं दे रहा है, अतः ऐसा अनुमान था कि उस आसनपर बैठनेमें किसी प्रकारकी आपत्ति पूज्य बाबूजीको नहीं होनी चाहिये।

पूज्य बाबूजी प्रवचन देनेके लिये पंडालमें आये। बैठनेके लिये पूज्य बाबूजीने ज्यों ही अपने निश्चित स्थानपर पैर रखा, उन्हें लगा कि स्थान कुछ ऊँचा-सा है। उन्होंने पूछा— आज यह स्थान ऊँचा-सा क्यों लग रहा है? देखो तो, क्या बात है?

नीचे कम्बल तो था ही। पूज्य बाबूजीने वह कम्बल तुरन्त नीचेसे भी हटवा दिया। पूज्य बाबूजीको वह कोई भी विशेष व्यवस्था अथवा विशिष्ट सुविधा स्वीकार नहीं थी, जो अपने भीतर किसी प्रकारकी श्रेष्ठता अथवा उच्चताकी भावनाको उपजने दे। ऐसी भावना तो किसी व्यक्तिको अपने जनोंसे अलग कर देती है। जो रहनी अलगावमें हेतु बने, वह जीवनके लिये वरदान कैसे हो सकती है?

सन् १९५६ में तीन धामोंके दर्शनके लिये तीर्थ-यात्रा-ट्रेन चली। उस ट्रेनमें पूज्य बाबूजीके लिये प्रथम श्रेणीके डिब्बेकी व्यवस्था की गयी थी। पूज्य बाबूजीने यह व्यवस्था अस्वीकार कर

दी। उन्हें यह सर्वथा अरुचिकर था कि मैं प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें सुविधापूर्वक रहूँ और साथके लोग तृतीय श्रेणीमें कसमसाते हुए यात्रा करें।

ऐसी थी सबके प्रति उनकी समत्व-भावना और आत्मदृष्टि।

[२] सहयोगकी भावना

गीतावाटिकामें रहनेवाले विरही संत श्रीरघुजीकी चर्चा पूज्य बाबूजी अनेक बार अपने प्रवचनोंमें किया करते थे, अतः उनका विस्तृत परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि कराचीके भाटिया परिवारमें आपका जन्म हुआ था और आपने ऊँची शिक्षा बम्बईमें प्राप्त की। यहीं बम्बईमें साधु-संगसे श्रीसीतारामजीकी अहैतुकी भक्ति आपके मनमें जाग उठी। आप बम्बईसे कराची गये, परंतु घरपर मन नहीं लगा और भक्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत करनेके लिये आप कराचीसे गोरखपुर बाबूजीके पास गीतावाटिका चले आये। उन्होंने अखण्ड मौन ले लिया और वे जीवनके अंततक यहीं गीतावाटिकामें रहे। आप निरन्तर 'रघु', 'रघु' जपा करते थे, अतः आपका नाम रघुजी पड़ गया। भगवानके विरहमें आपके दोनों नेत्रोंसे इतने आँसू बहते थे कि दोनों कपोलोंपर अश्रु-प्रवाहके निशान पड़ गये थे।

श्रीरघुजी गीतावाटिकामें रहते तो थे, परंतु पूज्य बाबूजीने कभी भी कोई नियम अथवा कोई मर्यादा उनपर थोपी नहीं। पूज्य बाबूजीका स्वभाव था साधन-भजन करने वाले साधकको पूरी-पूरी स्वतन्त्रता देना, इतना ही नहीं पूर्ण रूपसे सहयोग करना। श्रीरघुजी श्रीरामचतुष्टयके चित्रात्मक श्रीविग्रहकी उपासना किया करते थे। उनकी ठाकुर-सेवाके लिये पूज्य बाबूजीने निर्देश दे रखा था कि उन्हें जब जो आवश्यकता हो, तदनुसार वस्तु उनके पास पहुँचा देनी चाहिये। एक बार ठाकुर-सेवाके लिये श्रीरघुजीके पास ऐसे केले पहुँच गये, जो कुछ अधिक पक गये थे। संयोगसे किशमिश भी ऐसी पहुँची, जो कुछ गीली-गीली थी। श्रीरघुजी उन किशमिश और केलोंको लेकर पूज्य बाबूजीके पास गये और स्लेटपर पेंसिलसे लिखकर अपनी टूटी-फूटी हिन्दीमें कहने लगे— मेरे प्यारे-प्यारे कोमल-कोमल अति सुकुमार कुमार श्रीरघुनाथजीके लिये क्या ऐसे केले और ऐसी किशमिश ?

वे कुछ और बात आगे लिखें, कि पूज्य बाबूजी तुरंत बोल पड़े— जिसने ये वस्तुएँ आपके पास पहुँचायी हैं, उससे भूल हो गयी है। इन्हें भगवानके सामने कदापि निवेदित नहीं करना चाहिये। मैं अभी दूसरी व्यवस्था करता हूँ।

इतना कहकर पूज्य बाबूजीने उसी समय बाजारसे बढ़िया किशमिश और केले मँगवा कर दिये। इसीके साथ पूज्य बाबूजीने अपने सहयोगियोंको स्थायी निर्देश भी दे दिया कि श्रीरघुजीकी ठाकुर-सेवाके लिये कभी कोई हलकी अथवा दागी वस्तु न जाये और पूज्य बाबूजीके इस आदेशका पालन सदा सावधानीपूर्वक होता रहा। किसी भी साधककी भावनाका पूज्य बाबूजी बड़ा ध्यान रखते थे।

गीतावाटिकामें एक और महान शक्ति-साधक थे पूज्य श्रीरामचन्द्रन् ब्रह्मचारी। आप दक्षिणके तमिल प्रदेशके रहने वाले थे। आप एक जर्मन कम्पनीमें काम करते थे। वहीं उनमें विरक्तिका भाव जगा और वे घरसे बाहर निकल पड़े साधना करनेके लिये। वे अनेक स्थानोंके अनेक आश्रमोंमें इस आशासे गये कि वहाँ अनुकूल परिस्थिति मिल सके, जिससे वे तत्पर

होकर भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी उपासना कर सकें। इस बारेमें उन्हें बड़ा कटु अनुभव मिला कि भगवत्कैंकर्य अथवा गुरु-भक्ति अथवा साधु-सेवा अथवा आश्रम-कार्यके नामपर साधकसे बहुत काम करवाया जाता है। जिस-जिस आश्रममें वे गये, उन्हें सर्वत्र यही दृश्य दिखलायी दिया कि वहाँ साधककी श्रद्धाका दोहन होता है और साधककी भावनाओंपर उचित ध्यान नहीं दिया जाता। उनका मन बड़ा खिन्न था। धार्मिक 'कल्याण' पत्रिका और उसके आध्यात्मिक सम्पादक पूज्य बाबूजीकी ख्यातिको सुनकर श्रीब्रह्मचारीजी गोरखपुरकी गीतावाटिकामें भी आये यहाँके वातावरणको टटोलनेके लिये। उन्हें आश्चर्य हुआ यह देखकर कि उन्होंने जो सुविधा चाही, वह पूज्य बाबूजीके द्वारा गीतावाटिकामें उन्हें पूर्ण रूपसे मिली और फिर आश्रम-सेवाके नामपर कोई काम नहीं। कुटिया, भोजन, वस्त्र, औषधि आदि सभी प्रकारकी व्यवस्था उन्हें गीतावाटिकामें प्राप्त हुई और वह व्यवस्था ऐसी, जहाँ प्रतिदानकी कोई कामना नहीं, रंचमात्र कल्पना भी नहीं।

कुछ दिनों बाद स्वयं श्रीब्रह्मचारीजीके मनमें आया कि शरीर-निर्वाहके लिये मैं जो भोजन यहाँ करता हूँ, उस अन्नकी शुद्धिके लिये कुछ कार्य मुझे करना चाहिये। उन्होंने अपने मनका यह भाव पूज्य बाबूजीके सामने व्यक्त किया। पूज्य बाबूजी तो सदा साधना-परायण साधककी रुचिका आदर करते थे। पूज्य बाबूजीने पूछा— आप क्या काम करना चाहते हैं?

श्रीब्रह्मचारीजीने कहा— मैं हिन्दी तो जानता नहीं। तमिल मेरी मातृ-भाषा है। हाँ, मैं अँगरेजीमें टाइप कर सकता हूँ।

पूज्य बाबूजीने पूछा— आप कितना समय देना चाहते हैं?

श्रीब्रह्मचारीजीने कहा— लगभग दो घंटा।

पूज्य बाबूजीने वैसी ही व्यवस्था कर दी। गीतावाटिकामें हिन्दी 'कल्याण' पत्रिकाके साथ-साथ अँगरेजीमें 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाका भी सम्पादन होता था। इसका सारा कार्य-भार पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीपर था। पूज्य बाबूजीने एक अँगरेजी टाइप मशीन मँगवा दी। श्रीब्रह्मचारीजी 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाके लिये अँगरेजीमें लेख टाइप करने लग गये। दो घंटा टाइप करना और चौदह-पन्द्रह घंटोंतक साधना करना, यही उनका मुख्य दैनिक कार्य होता था। लगभग बयालीस वर्ष वे गीतावाटिकामें रहे और सन् १९८१ में यहीं अपने पाञ्चभौतिक चोलेको विसर्जित कर देवीलोकको पधार गये।

ऐसा नहीं समझना चाहिये कि पूज्य बाबूजी केवल गीतावाटिकामें रहनेवाले साधकको सहयोग देते थे, अपितु उनकी ऐसी उदार भावना हर क्षेत्रके और हर प्रकारके साधु-संतोंके प्रति रहा करती थी। सन् १९६८ के नवम्बर मासकी बात है। कर्नाटक प्रदेशके एक आश्रमके एक संन्यासी गीतावाटिका आये। उस आश्रमके महन्त थे समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी महाराजकी संत-परम्परावाले। उन्होंने अपने संन्यासी शिष्यको उत्तर भारत भेजा शालग्राम शिला लानेके लिये। वे हिन्दी नहीं जानते थे। भाषाकी कठिनाईको दूर करनेके लिये उन्होंने अपनी सहोदरा बहिनको साथ ले लिया। बहिन बड़ी विदुषी थी तथा हिन्दी भाषाका अच्छा ज्ञान था। वे दोनों भाई-बहिन गीतावाटिकामें आकर ठहरे और अपने आनेका प्रयोजन पूज्य बाबूजीको बतलाया। एक दिन विश्राम करनेके बाद वे दोनों नेपालकी यात्रापर चले गये। वे बड़े चावसे नेपाल गये

और उन्हें पर्वतीय यात्रामें बड़ा श्रम उठाना पड़ा, परंतु उनको सफलता नहीं मिली। एक-डेढ़ सप्ताहके बाद वे निराश होकर खाली हाथ लौट आये। आकर फिर ठहरे गीतावाटिकामें। उन्होंने अपनी कष्टपूर्ण यात्राका विवरण पूज्य बाबूजीको सुनाया। उनकी गाथा दर्द भरी असफलताकी कहानी थी।

पूज्य बाबूजीको यह तनिक भी अच्छा नहीं लग रहा था कि जो साधु अपने गुरुजीकी आज्ञासे शालग्राम शिला प्राप्त करनेके लिये सुदूर दक्षिणसे भारतके नितान्त उत्तरी छोरपर आया हो, वह रिक्त-हस्त और भग्न-हृदय वापस जाय। पूज्य बाबूजीने उनको पुनः नेपाल जानेके लिये उत्साहित किया। वे जाना तो नहीं चाहते थे, परंतु पूज्य बाबूजी द्वारा बार-बार कहे जानेपर उन्होंने साहस बटोरा और पुनः नेपाल-यात्राका निश्चय किया। इस बार उनकी यात्राके पीछे पूज्य बाबूजीकी भाव-शक्ति परोक्ष रूपसे कार्य कर रही थी। पूज्य बाबूजीकी प्रेरणासे वे दोनों भाई-बहिन पुनः नेपाल गये और नित्य पावनी गण्डकी सरिताके उद्गम-स्थलपर उन्हें अभीष्ट शालग्राम शिलाकी प्राप्ति हो गयी। श्रीगुरुजीने जिन-जिन चिह्नोंसे समलंकृत होना आवश्यक बतलाया था, वे-वे चिह्न उस शिलापर थे। इस बारकी यात्रामें पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कष्ट झेलना पड़ा, परंतु प्रसन्नता इसी बातसे थी कि यह दूसरी यात्रा पूर्ण सफल रही।

एक और उदाहरण लिख रहा हूँ। एक बार ग्रीष्म ऋतुमें पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में विराज रहे थे। एक युवक ब्रह्मचारी पूज्य बाबूजीके पास आये। वे थे गुजराती और उन्होंने वाराणसीके एक संतसे दीक्षा ले रखी थी। उनकी रुचि हठयोगमें थी। वे चाहते थे कि यदि गंगोत्रीमें मेरे आवास एवं आहारकी व्यवस्था हो जाय तो बारहों मास वहाँ रहकर अपनी साधना करूँ। गंगोत्री ही भगवती गंगाका उद्गम स्थल है। यह बड़ा ही ठण्डा और निर्जन स्थान है। वे वहीं अपनी योग-साधना करना चाहते थे। पूज्य बाबूजीने अपने व्यक्तियों द्वारा उन ब्रह्मचारीजीकी इच्छानुसार गंगोत्री-वासकी सारी व्यवस्था तत्काल करवा दी। श्रीब्रह्मचारीजी बहुत लम्बी अवधितक गंगोत्रीमें रहकर अपनी योग-साधना करते रहे। आजकल वे श्रीब्रह्मचारीजी वाराणसीमें एक बहुत बड़े आश्रमके सम्माननीय महन्त हैं। महन्त होकर भी प्रतिदिन उनका अधिकांश समय साधनामें ही व्यतीत होता है।

इसी स्वर्गाश्रममें पूज्य बाबूजीसे एक जर्मन महिला मिली। जर्मनीमें जन्म होनेके बाद भी भारतकी आध्यात्मिकतासे आकृष्ट होकर वे अपने देशसे भारत चली आयीं। वे बड़ी ही उत्तम मूर्तिकार तथा संगीतज्ञा थीं। उन्हें वीणा-वादनका अच्छा अभ्यास था। वे भी चाहती थीं कि यदि मेरे आहारकी व्यवस्था हो जाय तो हिमगिरिकी गुफामें रहकर साधना करूँ। पूज्य बाबूजीने उन जर्मन महिलाके लिये भी सारी-सारी समुचित व्यवस्था करवायी। लक्ष्मणझूलासे ऊपर गरूड़चट्टीके पास एक गुफामें रहते हुए वे अपनी साधनामें लीन हो गयीं। हमलोगोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता था कि हिंसक जंगली जन्तुओं वाले उस निर्जन स्थलपर वे विदेशी महिला गुफामें अकेली रहकर साधनामें संलग्न रहती थीं। जब पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रम जाया करते थे तो वे यदा-कदा आकर पूज्य बाबूजीको वीणा सुनाया करती थीं।

ये कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जिनसे उस प्रकारके सहयोगकी एक झाँकी मिलती है, जो स्थूल रूपसे प्रदान किये गये, किंतु कुछ सूक्ष्म प्रकारके ऐसे भी सहयोग पूज्य बाबूजी द्वारा प्रदत्त हुए,

जिनका कोई लेखा-जोखा नहीं। जब साधक अपनी साधना आरम्भ करता है तो अनेक प्रकारके विघ्न सामने आते हैं। कभी अशुभ कर्मराशिके विकट फल, कभी आधिदैविक बाधाओंकी अलंघ्य घाटियाँ, कभी शंकाओं और संदेहोंके भीषण झंझावात, कभी भ्रान्ति एवं कुतर्कोंके दुर्गम जंगल, कभी आसुरी शक्तियोंका मायावी जाल, कभी मानसिक विकृतियोंका घोर ताण्डव, कभी साध्य एवं साधनाका अल्प परिज्ञान, इस प्रकार कभी कोई, कभी कोई उपद्रव साधकके जीवनमें खड़ा हो जाता है और वह साधक किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर बैठ जाता है। ऐसे हताश-निराश, असहाय-निरुपाय साधकोंको पूज्य बाबूजी बड़े गुप्त रूपसे सँभालते रहे हैं। उनके मंगल एवं प्रगतिके लिये कभी अनुष्ठान करना, कभी अनुष्ठान करवाना, कभी सुझाव देना, कभी प्रेरणा देना, कभी साहित्य देना, कभी संकल्प करना, इस प्रकार पूज्य बाबूजी चुपचाप विविध उपाय किया और करवाया करते थे, जिसका कोई विवरण है ही नहीं। कृतज्ञताभिभूत साधकोंसे कभी-कभी कुछ आभारोद्गार सुननेको मिलते हैं, उससे अनुमान लगाया जाता है कि पूज्य बाबूजीने उनके लिये क्या-क्या और कितना-कितना किया है।

ऊपर जो लिखा गया है, वह तो शाखा-चन्द्र-न्यायके अनुसार एक संकेत मात्र दिया गया है, जिससे कुछ झलक मिल सके। साधकों और संतोंको विभिन्न अवसरोंपर विविध प्रकारसे सहयोग दिये जानेके अनन्त प्रसंग है। वे चाहे किसी सम्प्रदायके हों, चाहे किसी पंथके हों, चाहे किसी प्रदेशके हों, सभी साधुओं-संतों-साधकोंको उनके भजन एवं साधना-परायण जीवनमें उनकी अभिलाषा एवं आवश्यकताके अनुसार सहायता-सहयोग करनेके लिये पूज्य बाबूजी सदैव तत्पर रहा करते थे। ■

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल

[१] आदेशका पालन

बात पुरानी है। एक प्रसिद्ध विद्वान महोदयने दर्शनशास्त्रपर हिंदीमें एक अच्छा ग्रन्थ प्रकाशित कराया था। उन्होंने उसकी एक प्रति पूज्य बाबूजीके पास भेंटस्वरूप भेजते हुए पत्रमें लिखा— इस ग्रन्थकी अच्छी-सी समालोचना आप 'कल्याण' में अवश्य प्रकाशित कर दें।

पूज्य बाबूजी उन दिनों 'कल्याण' के विशेषांकके कार्यमें व्यस्त थे एवं उनका स्वास्थ्य भी कुछ शिथिल था, अतएव उस पत्रका उत्तर सामान्यरूपमें सम्पादकीय विभागके एक सदस्यने लिख दिया था— 'कल्याण' में आपके ग्रन्थकी समालोचना प्रकाशित नहीं हो पायेगी। कृपया विवशताके लिये क्षमा करें।

इस उत्तरको प्राप्त करके विद्वान महानुभावको बड़ा असंतोष हुआ, पर उन्होंने अपना असंतोष मनमें ही रखा, पत्ररूपमें उसे व्यक्त नहीं किया।

एक-दो मास बाद किसी कामसे वे विद्वान महोदय गोरखपुर पधारे और पूज्य बाबूजीसे मिले। पूज्य बाबूजीने उनका बहुत ही आदरके साथ स्वागत किया, चरण छूकर प्रणाम किया और अपने सहज स्वभावसे पूछा— महाराजजी ! कोई सेवा हो तो बताइये।

पूज्य बाबूजीके मुखसे ये शब्द सुनते ही विद्वान महोदय मुखर हुए। ग्रन्थकी समालोचना

प्रकाशित न होनेके कारण जो असंतोष उनके हृदयमें था, उसे व्यक्त करनेका उन्हें अच्छा अवसर मिल गया। *'कामात् क्रोधोऽभिजायते'* कामना प्रतिहत होकर क्रोध बनती है। विद्वान महोदयने कहा— भाईजी! आप पूछ रहे हैं कि कोई सेवा हो तो बताइये। दो मास पूर्व एक सेवा बतायी थी। दर्शन-विषयपर लिखा गया अपना ग्रन्थ आपको भेजा था और आग्रहपूर्वक लिखा था कि उसकी अच्छी समालोचना 'कल्याण'में प्रकाशित कर दीजियेगा, परंतु आपने उस सेवाकी ओर तो ध्यान ही नहीं दिया और मिलनेपर सेवा बतानेकी बात कह रहे हैं। क्या 'कल्याण' जैसे आध्यात्मिक पत्रके सम्पादकका यही स्वरूप होना चाहिये!

पूज्य बाबूजीने विद्वान महोदयके रोषभरे शब्द शान्त-भावसे सुने और दोनों हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते हुए वे बोले— महाराजजी! आपका कहना सत्य है, किंतु क्या करूँ? आपका ग्रन्थ मिला। उन दिनों मैं विशेषांकके कार्यमें अत्यधिक व्यस्त था। साथ ही शरीर भी रुग्ण था, अतएव उसका उत्तर मैं स्वयं नहीं लिख पाया। पता नहीं, मेरे साथियोंने आपको क्या उत्तर लिखा, किन्तु महाराजजी! 'कल्याण'के आरम्भसे ही हमलोगोंकी यह दृढ़ नीति रही है कि किसी भी ग्रन्थकी समालोचना उसमें प्रकाशित नहीं की जाय। इस नीतिके निर्धारणकी भी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। महात्मा गाँधीजीसे मेरा प्रथम परिचय सन् १९१५ में हुआ। महात्माजी सन् १९१५ में जब दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेपर रंगून होकर कलकत्ता पधारे, तब वहाँकी हिंदू-सभा संस्थाकी ओरसे मन्त्रीके रूपमें मैंने उनका स्वागत किया था तथा अल्फ्रेड थियेटरमें उन्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था। पीछे क्रान्तिकारी गति-विधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण जब मैं बंगालसे निष्कासित कर दिया गया, तब सन् १९१८ से १९२७ ई. तक मैं बम्बईमें रहा। उस अवधिमें महात्माजीके साथ अत्यन्त घनिष्ठता हो गयी। वे जब बम्बई पधारते, तब स्वर्गीय भाई श्रीजमनालालजी बजाजके साथ व्यावसायिक कार्य करनेके कारण उनकी ओरसे महात्माजीके सारे आतिथ्यका भार मेरे ही जिम्मे रहता था। महात्माजी बम्बईमें मेरे घरपर भी कई बार पधारे थे। उनका मेरे साथ सम्बन्ध प्रायः वैसा ही कौटुम्बिक था, जैसा उनका अपने पुत्र भाई देवदासके साथ था। जब 'कल्याण' पत्रिका प्रकाशित हुई, तब पत्रिकाके लिये महात्माजीका आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु श्रीजमनालालजी बजाजको साथ लेकर मैं उनके पास गया था। 'कल्याण'के सम्बन्धमें निर्धारित नीतियोंको सुनकर महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि दो नियमोंका पालन दृढ़तासे करना। बाहरी कोई विज्ञापन नहीं देना तथा पुस्तकोंकी समालोचना मत छापना। विज्ञापन न छापनेके सम्बन्धमें उन्होंने हेतु बताया कि तुम अपनी जानमें पहले-पहले यह देखकर विज्ञापन लोगे कि वह किसी ऐसी चीजका न हो, जो भद्दी हो और जिसमें जनताको धोखा देकर ठगनेकी बात हो। आगे चलकर ऐसी परिस्थिति तुम्हारे सामने आयेगी कि तुम्हारे विरोध करनेपर भी साथी लोग कहेंगे कि देखिये इतना पैसा आता है, क्यों न यह विज्ञापन स्वीकार कर लिया जाय? बस, पैसेका प्रलोभन आया कि जनताके लाभ-हानिकी बात एक ओर रह जायगी, अतएव आरम्भसे ही यह नियम बना लो कि 'बाहरी विज्ञापन स्वीकार करना ही नहीं है'। समालोचनाके सम्बन्धमें यह बात है कि जो लोग समालोचनाके लिये तुम्हारे पास अपनी पुस्तकें भेजेंगे, उनमेंसे अधिकांश इसलिये भेजेंगे कि तुम्हारे पत्रमें उनके ग्रन्थकी प्रशंसा निकले! यथार्थ समालोचना करानेके लिये अपनी पुस्तक भेजनेवाले बिरले ही होते हैं। ऐसी स्थितिमें पुस्तकें चाहे जैसी हो, या तो उनकी झूठी प्रशंसा

करनी होगी या उन साहित्यकारों, लेखकोंसे झगड़ा मोल लेना पड़ेगा। इसलिये समालोचना मत छापना। महात्मा गाँधीजीकी बात सुनकर मैंने उनसे कहा कि बापू! आपका आशीर्वाद चाहिये और भगवान शक्ति दें कि इन दोनों नियमोंका दृढ़ताके साथ पालन हो। फिर बापूने 'कल्याण'की सफलताके लिये हृदयसे आशीर्वाद दिया। तबसे आजतक 'कल्याण'की वही नीति चली आ रही है। गाँधीजीने जो आशंका व्यक्त की थी, आगे चलकर वह सामने आ गयी। ज्यों-ज्यों 'कल्याण'का प्रचार बढ़ने लगा, त्यों-त्यों विज्ञापनवालोंके आग्रह आने लगे। जब इसके एक लाख ग्राहक हो गये, तब तो लोग खूब अधिक पैसा देकर विज्ञापन छपवानेको तैयार हो गये। समालोचनाके लिये भी बहुत-सी पुस्तकें आयीं, बहुत तरहसे दबाव डाले गये, पर भगवान रक्षा करते चले आ रहे हैं। महाराजजी! आपकी सेवा न करनेका अपराध मेरे द्वारा अवश्य हुआ है, पर किन परिस्थितियोंमें, यह आपके सामने स्पष्ट है। आप गुरुजन अपराधके लिये जो दण्ड देंगे, वह शिरोधार्य है। बस, मुझे इतना ही संतोष है कि आजतक 'कल्याण'की रीति-नीतिका निर्वाह मेरेद्वारा भलीभाँति हो रहा है। इससे मेरे मनमें प्रसन्नता भी है। गुरुजनोंद्वारा प्रदत्त आदेशका पालन करनेके लिये मैं सदा सचेष्ट रहा हूँ और होश रहते उसमें किसी प्रकारकी शिथिलता आने देनेका विचार भी नहीं है।

'कल्याण'की रीति-नीतियोंका परिचय प्राप्त करके विद्वान महोदयका रोष शान्त हो गया। वे पूज्य बाबूजीको आशीर्वाद देते हुए बोले— भाईजी! आपने पत्रकारिता-जगतके सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। मुझे यह जानकर आन्तरिक प्रसन्नता हुई कि आप गुरुजनोंके आदेशका इतनी दृढ़ताके साथ पालन करते हैं।

विद्वान महोदयके चरणोंमें अपना मस्तक रखते हुए पूज्य बाबूजीने कहा— आप जैसे गुरुजनोंके श्रीचरणोंके आशीर्वादका ही यह फल है। बस, जीवनपर्यन्त आशीर्वाद बना रहे!

विद्वान महोदय भाव-विभोर थे।

[२] उलझन दूर हो गयी

इस समय मुझे भली प्रकारसे स्मरण नहीं हो पा रहा है कि यह प्रसंग किन पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजसे सम्बन्धित है। जगन्नाथपुरी स्थित गोवर्धन-पीठाधिपति अथवा शृंगेरी स्थित शारदा-पीठाधिपति परम पूज्य जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज एक बार गीतावाटिका पधारे। उत्तर भारतके विभिन्न स्थानोंका परिभ्रमण करते हुए ही पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजका गोरखपुरमें शुभागमन हुआ था और स्नान-पूजादिसे निवृत्त होनेके उद्देश्यसे आपने गीतावाटिकामें कुछ घंटोंके लिये पूज्य बाबूजीका आतिथ्य स्वीकार किया था। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके शुभागमनको बाबूजीने अपना सौभाग्य समझा। बाबूजीने अपनी सुपुत्री सावित्रीबाईको तथा उसकी माँको बुलाकर प्रणाम करवाया। बाबूजीने तत्काल पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके विश्रामादिकी सुन्दर-से-सुन्दर व्यवस्था करवायी। महान धर्माचार्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजकी सेवा और सम्मानमें जो कुछ सम्भव था, उसमें बाबूजीकी ओरसे कहीं कोई न्यूनता नहीं थी। बाबूजीकी सच्ची मान्यता थी कि इन महान संतोंकी 'आध्यात्मिक जूठन' का ही 'कल्याण' पत्रिकाके द्वारा जन-जनमें वितरण होता है और इन साधु-महात्माओंके शुभाशीर्वादसे ही 'कल्याण' और 'गीताप्रेस' अध्यात्म और धर्मके क्षेत्रमें

कुछ कार्य कर पा रहा है।

पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके साथ जो परिकर थे, उनसे बाबूजीने महाराजजीकी भिक्षाके सम्बन्धमें पुछवाया तो उन्होंने बताया— महाराजजी पूजा-ध्यानादिसे निवृत्त होनेके बाद सात द्वारपर भिक्षा माँगते हैं। भिक्षामें जो मिल जाता है, वही उनका आहार होता है।

भिक्षा लेनेके लिये एक घर बाबूजीका अपना था ही, इसके अतिरिक्त छः वैष्णव गृहस्थोंको बाबूजीने सूचित करवा दिया कि आज पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज आपके घरपर भिक्षा लेने आयेंगे। बाबूजीने अपने घरके चौकेमें भी भिक्षा सम्बन्धी आवश्यक निर्देश दे दिया।

अब मैं बाबूजीके घरकी बात बता रहा हूँ। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजकी सँभालका दायित्व बाबूजीने मुझे सौंप रखा था। हम लोगोंमें सेवाका उत्साह कम नहीं था, पर एक परिस्थितिने मेरे मनको अत्यधिक अस्त-व्यस्त कर दिया। मेरा ऐसा अनुमान था कि पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज मध्याह्नके समय भिक्षा माँगने आयेंगे और इसी अनुमानके आधारपर चौकेमें रसोई बन रही थी। रसोईके बन जानेपर सेव्य श्रीठाकुर विग्रहोंको भोग पधराया जाता, फिर पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजको भिक्षा दी जाती और इसके बाद घरके लोग प्रसाद पाते। मेरे अनुमानने मुझे धोखा दे दिया। पूर्वाह्नकालमें ही पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज भिक्षा माँगनेके लिये अपने विश्रामकक्षसे चल पड़े। मैं सर्वथा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया कि क्या करूँ? रसोई अभी तैयार नहीं है और द्वारसे पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज खाली हाथ जायें, यह तो सर्वथा अनुचित होगा। उस समय मेरे मनपर जो बीत रही थी, वह तो बस मैं ही जानता हूँ। कोई भी समाधान उभर कर मेरे सामने नहीं आ रहा था। कुछ मिनटोंमें ही इस उलझनने मेरे मनमें विकट रूप धारण कर लिया। जब कोई उपाय नहीं सूझा तो मैं दौड़कर बाबूजीके पास गया और परिस्थितिकी उलझन उनके सामने रख दी। बाबूजीने कहा— चौकेमें क्या-क्या बन कर तैयार है?

मैंने कहा— दाल-भात और एक साग। अन्य साग तथा रोटी बननेवाली हैं।

बाबूजी तुरंत अपने आसनपरसे उठे और ऊपरसे नीचे आये। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज द्वारपर पहुँचें, इसके पहले ही बाबूजी द्वारपर पहुँच गये। साथमें मैं था ही। ज्यों ही पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज द्वारपर आये, बाबूजीने उनको सभक्ति प्रणाम किया और मुझसे कहा— जाओ! चौकेमेंसे श्रीस्वामीजी महाराजके लिये भात-दाल-साग ले आवो और साथमें कुछ फल भी ले आना।

बाबूजीकी आज्ञानुसार भिक्षा हेतु प्रदेय वस्तु लानेके लिये मैं चौकेकी ओर चल दिया, परन्तु मन-ही-मन मेरी उलझन और बढ़ गयी कि ठाकुरजीको भोग लगा नहीं और चौकेकी रसोईका प्रयोग आरम्भ हो गया। मनमें उथल-पुथल होते हुए भी मैं कुछ बोला नहीं। बाबूजीकी आज्ञाके पालनके रूपमें भात-दाल-साग-फल मैं ले आया और बाबूजीने उन वस्तुओंको भिक्षा-पात्रमें दे दिया।

पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने भिक्षा पाकर प्रसन्न वाणीमें आशीर्वाद दिया। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज जब दूसरे वैष्णव गृहस्थके द्वारपर चले गये, तब मैंने बाबूजीसे कहा— अभी ठाकुरजीको तो भोग लगा ही नहीं था।

बाबूजीने कहा— *मेरा अनुमान ऐसा ही था कि ठाकुरजीको भोग नहीं लगा होगा, पर पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजको भिक्षा न दी जाये, यह भला कैसे हो सकता है? पहली बात तो यह है कि कोई भी अतिथि भगवानका स्वरूप ही होता है, पर आज तो अतिथियोंमें भी परमश्रेष्ठ अतिथि थे स्वयं पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज, जो अपने महान धर्म-संरक्षक पूज्य श्रीआदिशंकराचार्यजीके प्रतीक एवं प्रतिनिधि स्थानीय हैं। यह हमारे लिये कितने बड़े सौभाग्यकी बात है कि ऐसे महान संन्यासी अपने द्वारपर भिक्षा हेतु पधारें। अब रही ठाकुरजीके भोगकी बात। अपने घरमें पूजाकी जो मर्यादा है, उसका भी पालन अवश्य होना चाहिये। बनी हुई रसोईमेंसे भिक्षा दी जा चुकी है, अतः उसमेंसे भोग लगाया नहीं जा सकता। अतः अब पुनः नये सिरेसे रसोई बनेगी। जब रसोई बन जायेगी, तब उससे ठाकुरजीको भोग लगेगा और उसके बाद घरके लोग भोजन करेंगे।*

बाबूजीने बिगड़ी बात सँभाल ली। सारी बात बन गयी। सारी समस्या हल हो गयी। बाबूजीका वह प्रत्युत्पन्नमतित्व बार-बार याद आता है, जिसने विकट परिस्थितिको एकदम सरल कर दिया और जिससे सारी उलझन दूर हो गयी।

[३] दक्षिणी विद्वानोंसे बातचीत

दक्षिण भारतके विद्वानोंकी एक विचार-गोष्ठी हरिद्वारमें आयोजित थी। विचार-गोष्ठीमें भाग लेनेके लिये अनेक दक्षिणी विद्वानोंका आगमन हुआ। यात्राके क्रममें उन विद्वानोंके समुदायको अपने साथ लेकर श्री ए. वी. राजगोपालन् गीतावाटिका आये। श्रीराजगोपालन् दक्षिणके प्रसिद्ध भाषाविद् हैं तथा आगराके केन्द्रीय हिन्दी संस्थानमें प्राध्यापक हैं। उन्हें पूज्य बाबाके दर्शन करवाये गये तथा प्रसाद भी दिया गया। उन्हीं विद्वानोंमेंसे कुछ पीछे रह गये थे। जब दो विद्वानोंने आकर पूज्य बाबाके दर्शनके लिये उत्सुकता व्यक्त की तब पूज्य बाबूजीने कहा— स्वामीजीको बार-बार बाहर लानेमें सुविधा नहीं है। वे प्रायः शरीर-धरातलपर नहीं रहते। उनकी वृत्ति अधिकतर अन्तर्मुखी रहती है।

फिर विद्वानोंने पूज्य बाबाके पूर्व-जीवन, उनकी दिनचर्या, उनकी आध्यात्मिक स्थिति आदिके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये और पूज्य बाबूजीने उनका उत्तर बड़ी विनम्रताके साथ दिया। बादमें पूज्य बाबूजीसे उन्होंने पूछा— आप कौन हैं? यहाँ क्या करते हैं? पोद्दारजी कहाँ है? हमें उनके भी दर्शन करने हैं। इसीलिये हम लोगोंका यहाँ आना हुआ है।

पूज्य बाबूजीने कहा— मैं यहीं रहता हुआ 'कल्याण'में काम करता हूँ।

इसपर विद्वानोंने आपसमें कहा— 'कल्याण' आफिसमें कुछ काम करते होंगे।

पूज्य बाबूजी चुप रहे। विद्वानोंको सत्यसे अवगत करानेके लिये मैंने कहा— 'कल्याण'के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आप ही हैं।

इतना सुनते ही वे विद्वान लोग बड़े संकुचित हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर पूज्य बाबूजीको प्रणाम किया और बोले— पहले आपके दर्शन कभी नहीं हुए थे, इससे हमलोग पहचान नहीं सके।

पूज्य बाबूजीने भी उनको प्रणाम किया एवं उनको सम्मान दिया। पीछे विद्वानोमेंसे एकने कहा— मैंने आपको दो पत्र दिये थे 'नारायणीयम्' के सम्बन्धमें। आप उसपर 'कल्याण'का

विशेषांक निकालनेकी कृपा करें।

पूज्य बाबूजीने कहा— मैं इसपर अवश्य विचार करूँगा।

इसके बाद वन्दन करके वे विद्वान गीतावाटिकासे चले गये।

[४] साधु-व्यवहार

संतका व्यवहार लोकातीत होता है। उसकी अपनी कोई माँग नहीं होती और वह दूसरोंकी माँगको पूरा करनेके लिये सदा तत्पर रहता है। पूज्य बाबूजी गृहस्थके रूपमें रहते हुए ऐसे ही एक सच्चे संत थे। उनके जीवनकी अनेक घटनाएँ हैं, जहाँ उन्होंने दूसरोंकी उचित-अनुचित सभी प्रकारकी माँगोंका आदर किया है।

अप्रैल, सन् १९६८ की बात है। पूज्य बाबूजी अपने परिवार सहित सत्संगके लिये गीताभवन (स्वर्गाश्रम) जा रहे थे। मैं भी पूज्य बाबूजीके साथ था। लखनऊ स्टेशनपर उनके लिये देहरादून एक्सप्रेसमें हरिद्वारतकके लिये प्रथम श्रेणीकी चार बर्थोंवाली एक केबिन आरक्षित करवायी गयी थी। जब गाड़ी स्टेशनपर पहुँची और मैं डिब्बेमें घुसा, तब मैंने देखा कि एक शिक्षित भद्र पुरुष सपरिवार पूज्य बाबूजीके लिये आरक्षित केबिनमें बैठे हैं। मैंने उन महाशयको केबिन खाली करनेके लिये कहा। पढ़े-लिखे होनेपर भी उन्होंने केबिन खाली करना अस्वीकार कर दिया। उसका हेतु पूछनेपर उन्होंने बताया— मेरे नामसे 'सी' केबिन आरक्षित है और यह 'सी' केबिन है, अतएव मैं यह खाली नहीं करूँगा।

मैंने उनसे प्रार्थना की— लखनऊसे दो डिब्बे हरिद्वारके लिये लगते हैं। आपका 'सी' केबिन दूसरे डिब्बेमें है, इसमें नहीं।

मेरे निवेदनपर वे कुछ भी ध्यान देनेके लिये तैयार नहीं हुए। मैं रेलवे अधिकारियोंको बुलाने जा रहा था कि पूज्य बाबूजी डिब्बेमें प्रविष्ट हुए। जब उन्हें पता चला कि केबिनके लिये विवाद हो रहा है, तब वे पूरी परिस्थिति समझे बिना ही मेरे ऊपर बिगड़ खड़े हुए और कहने लगे— यात्रामें दूसरोंकी सुख-सुविधापर ध्यान नहीं देते और मेरे लिये सुविधा करना चाहते हो! दूसरोंको असुविधा होनेसे मुझे जो कष्ट हृदयमें होगा, उसकी तुम लोगोंको कल्पना नहीं है। जब एक केबिनमें एक महाशय सपरिवार बैठे हैं, तब तुमलोगोंको उसमें क्यों प्रवेश करना चाहिये?

मैंने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा— हम लोगोंके नामसे यह केबिन आरक्षित है। इन महाशयके लिये इसी प्रकारकी दूसरी केबिन दूसरे डिब्बेमें है। हम इनसे यही प्रार्थना कर रहे हैं कि आप भूलसे दूसरे डिब्बेके 'सी' केबिनमें आ गये हैं। लाइये, आपका सामान अपने कुलियों द्वारा उस डिब्बेके 'सी' केबिनमें भेज दें। मैं इनके साथ तनिक भी अभद्र व्यवहार या ज्यादती नहीं कर रहा हूँ।

पूज्य बाबूजी पूरी स्थितिको समझ गये, किन्तु उनका संत हृदय इस बातको स्वीकार नहीं कर सका कि जबतक वे सज्जन अपनी भूल समझकर स्वयं ही जानेके लिये तैयार न हों, तबतक हमलोग उस केबिनमें घुसें और उन्हें वहाँसे हटनेकी प्रार्थना करें। पूज्य बाबूजी स्वयं केबिनके बाहर गैलरीमें खड़े हो गये। संयोगसे कानपुरकी एक बहिन भी उसी गाड़ीसे हरिद्वार जा रही थी। उनके नामसे 'बी' केबिन आरक्षित था। जब उसने देखा कि पूज्य बाबूजी, पूज्य बाबा, पूज्या माँजी आदि गैलरीमें खड़े हैं, तब उसने प्रार्थना की— आपलोग मेरी केबिनमें

आकर बैठ जायँ।

पूज्य बाबूजीने पहले तो इसे स्वीकार नहीं किया, पर जब सबने आग्रह किया, तब वे उस बहिनकी केबिनमें पूज्य बाबा, पूज्या माँजी आदिके साथ जाकर बैठ गये, परंतु पूज्य बाबूजीका सब सामान गैलरीमें पड़ा रहा। मुझे इस बातसे बड़ा कष्ट हो रहा था कि मेरा बहुत समय इस विवादमें चला गया। परिणाम यह हुआ कि हमारे परिवारकी एक बहिन, साथका एक नौकर तथा बहुत-सा सामान प्लेटफार्मपर रह गया और सीटी देकर गाड़ी चल पड़ी। परिवारकी बहिनके प्लेटफार्मपर रह जानेकी बात जब पूज्य बाबूजीको बतलायी गयी, तब उन्हें भी बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु वे इस बातसे निश्चिन्त थे कि लखनऊसे अनेकों श्रद्धालुजन, जो उन्हें विदा करनेके लिये आये थे, वे उस बहिनको सँभाल लेंगे तथा उसे सुरक्षित रूपसे किसी दूसरी गाड़ीसे हरिद्वार भेज देंगे।

गाड़ी छूटनेपर मैंने पूज्य बाबूजीको 'सी' केबिनवाले महानुभावकी नासमझी तथा हठधर्मीके विषयमें समझानेकी चेष्टा की, पर पूज्य बाबूजी इस बातको स्वीकार ही नहीं कर पाये कि उन महाशयके साथ तनिक भी जबर्दस्ती करनी चाहिये। पूज्य बाबूजी बहुत देरतक मुझे समझाते रहे— *जहाँ विवाद हो, वहाँ अपनी माँगका त्याग कर देना चाहिये। सुख-सुविधाका मनसे सम्बन्ध है। हम लोग जैसे-तैसे बैठकर चले जायेंगे। तुमने उन महाशयसे बार-बार कहा-सुना है, तुम इसके लिये जाकर उनसे माफी माँगो। चलो, मैं उनसे माफी माँगता हूँ।*

इतना कहकर पूज्य बाबूजी उठ खड़े हुए उन महाशयके पास जानेके लिये, पर मैंने अनुनय-विनय करते हुए स्पष्ट किया— उन महाशयके साथ मैंने तनिक भी अभद्र व्यवहार नहीं किया है। वे बड़े मजेमें अपने केबिनको बन्द करके बैठे हुए हैं।

इसी बीच हरदोई स्टेशन आ गया। कंडक्टर महोदयने उन महाशयके टिकटोंकी जाँच की और उन्हें बतलाया— आपका आरक्षण दूसरे डिब्बेमें है, इसमें नहीं।

अब उनको बाध्य होकर दूसरे डिब्बेमें जाना पड़ा। पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा— उनका सब सामान कुलियोंद्वारा उस डिब्बेमें भिजवा दो और कुलियोंका पैसा अपने पाससे दे दो तथा उनसे क्षमा माँग लो कि आपको डिब्बा-परिवर्तन करनेका कष्ट उठाना पड़ रहा है।

मैंने वही किया। इतना ही नहीं, जब वे सज्जन डिब्बेसे उतरने लगे, तब स्वयं पूज्य बाबूजीने उनसे कहा— आपको असुविधा हुई, क्षमा कीजियेगा।

भूल करनेवालेसे क्षमा माँगना पूज्य बाबूजीका ही काम था। पूज्य बाबूजीके इस साधु-व्यवहारको देखकर साथवाले मुग्ध हो गये।

[५] श्रीमुरलीधरजी कानोड़िया

कानपुरके श्रीमुरलीधरजी कानोड़िया विदेश-यात्रासे लौटकर गोरखपुर आये पूज्य बाबूजी एवं पूज्य राधा बाबाका दर्शन करनेके लिये। गीतावाटिकामें जिस दिन श्रीमुरलीधरजी पहुँचे, उस दिन पूज्य बाबासे बातचीत करनेका उनको अवसर मिला। बातचीतके बीचमें पूज्य बाबाने बात करते-करते उनसे कहा— *मेरी आवश्यकता आपको पड़ेगी तब, जब आपके जीवनके अन्तिम क्षण पास होंगे। उस समय मेरे सहयोगका स्वरूप क्या होगा, यह तो वह अन्तिम क्षण*

ही आपको समझा पायेगा।

भावी विचित्र होती है। संयोगकी बात, इस बातचीतके अगले दिन ही श्रीमुरलीधरजी गिर पड़े उस विल्व-वृक्षके पास, जहाँ प्रति सोमवारको भगवान शिवका सविधि देवार्चन हुआ करता है। उनके सर्वांगको लकवा मार गया था। श्रीमुरलीधरजीको उठाकर लाया गया नयी कोठीमें, जो गीतावाटिकाके सामने स्थित है। नयी कोठीके हॉलवाले बड़े कमरेमें उनको रखा गया। उनकी चिकित्साकी भरपूर व्यवस्था की गयी, इसके बाद भी उनकी स्थिति प्रतिक्षण बिगड़ती ही चली गयी। शारीरिक कष्ट तो अपनी सीमापर था ही, इसके अतिरिक्त चिन्ताकी अधिकतासे उनका मन अत्यधिक चञ्चल हो रहा था। न जाने कितने विषयोंमें, स्थानोंमें, व्यक्तियोंमें, वस्तुओंमें, कृत्योंमें, समस्याओंमें, मुकदमोंमें उनका मन बँटा और बिखरा हुआ था और इसके फलस्वरूप मन अत्यधिक अशान्त था। सर्वांगको लकवा होनेसे वे कुछ बोल तो पाते नहीं थे, उनके बेचैन और विकल मनको देख रहे थे और समझ रहे थे पूज्य बाबूजी, जिन्होंने अपनी 'भीतरी आँखों' से उनकी दर्दभरी, दुःखभरी दशाको जान लिया था।

उन दिनों पूज्य बाबाके पास एक अमेरिकन महिला रहती थीं। उन्होंने संन्यास ले लिया था और उनका नाम था स्वामी सत्यप्रेमानन्दाजी। उन्होंने देखा कि जिस कमरेमें श्रीमुरलीधरजीको रखा गया था, उस कमरेके आकाशमें आसुरी शक्तियाँ (Evil Spirits)खड़ी थीं और उस अवसरकी प्रतीक्षा कर रही थी जब कि संत्रस्त करके तथा नोच-नोच करके उनको भीषण यातना पहुँचायी जाय। भयानक आकृतियों वाली अनेक आसुरी शक्तियोंको देखकर स्वामी सत्यप्रेमानन्दाजी भी काँप उठी। जब उन्होंने इन सबका विवरण पूज्य बाबाको सुनाया तो पूज्य बाबाको थोड़ा विस्मय हुआ कि क्या स्वामी सत्यप्रेमानन्दाजीका भी उस दैवी राज्यमें इतना प्रवेश है, जो वे मानवातीत स्तरकी चीजें कुछ हदतक देख ले सकती हैं। पूज्य बाबाने उनसे कहा– *जीवनमें किये गये अशुभ कर्म अन्तमें बड़ा कष्ट पहुँचाते हैं। भीषण कष्टके रूपमें मिलने वाला कुपरिणाम मानवके ध्यानमें यदि रहे तो वह अशुभ कर्ममें प्रवृत्त ही क्यों हो? प्रभुकी माया बड़ी प्रबल है। धन-पद-यौवन-प्रतिष्ठा आदिका मद मानवको अन्धा बना देता है और उसके कुपरिणामकी ओर उसकी दृष्टि जाती ही नहीं। आकाशमें स्थित जिन आसुरी शक्तियोंको आप देख रही हैं, वह पूर्णतः सत्य है। इस सत्यको आपने कह दिया और मैंने देखकर भी कहा नहीं था। इस जीवनमें जो कुछ अशुभ कर्म हुआ है, उसीका यह अनचाहा, पर अनिवार्य भीषण फल है। यहाँ आकाशमें आसुरी शक्तियाँ उपस्थित अवश्य हैं, पर उसीके साथ एक तथ्य यह भी है कि श्रीपोद्दार महाराजकी यहाँ उपस्थितिके कारण वे आसुरी शक्तियाँ कुछ भी कर सकनेमें स्वयंको असमर्थ अनुभव कर रही हैं। इस समय ये श्रीपोद्दार महाराजके अतिथि हैं, उनके आश्रित हैं, अतः उनके आध्यात्मिक तेजके कारण वे आसुरी शक्तियाँ आगे बढ़नेका साहस नहीं कर पा रही हैं।*

तीसरे दिन श्रीमुरलीधरजीकी स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी। वे अर्ध-चेतनावस्थामें खाटपर पड़े हुए थे। उस समय पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबा वहीं उपस्थित थे। पूज्य बाबाने पूज्य बाबूजीसे कहा– मैं शौच-स्नानसे निवृत्त होनेके लिये बगीचे जा रहा हूँ।

पूज्य बाबूजीने कहा– ये मरणासन्न स्थितिमें हैं और आप अब जानेकी बात कह रहे हैं। इस

समय आपकी उपस्थिति और सहयोगकी आवश्यकता है। आपके शौच-स्नानादिकी व्यवस्था मैं यहीं कोठीमें करवा देता हूँ।

पूज्य बाबा नयी कोठीमें ठहर गये। तुरन्त एक शौचालय भली प्रकार साफ किया गया। स्नानके लिये वहीं कूप जल आया। शौच-स्नानसे निवृत्त होकर पूज्य बाबा श्रीमुरलीधरजीके पास आये। पूज्य बाबूजी तो वहीं बैठे हुए थे ही। आकर पूज्य बाबाने श्रीमुरलीधरजीकी कलाईकी नाड़ी देखी। नाड़ीकी गतिमें बड़ी गड़बड़ी थी। उन्होंने जान लिया कि अब मृत्यु नितान्त निकट है। पूज्य बाबा श्रीमुरलीधरजीकी नाड़ीपर अपनी अँगुलियाँ रखे रहे और मानसिक स्तरपर प्रबल संकल्पके द्वारा अपनी 'प्राण शक्ति' का उनकी 'प्राण शक्ति' से सम्बन्ध स्थापित किया। सम्बन्ध स्थापित होते ही बेहोश श्रीमुरलीधरजीने अपने नेत्र खोले और चारों ओर देखने लगे। ज्यों ही उन्होंने पूज्य बाबा एवं पूज्य बाबूजीकी ओर देखा, उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उनके निधन होनेके बाद सभी उपस्थित लोगोंसे पूज्य बाबूजीने कहा– *श्रीमुरलीधरजीका मन अत्यधिक बिखरा हुआ था। जागतिक समस्याओंमें फँसा हुआ मन चिन्ताग्निके तापसे बड़ा संतप्त था। उनकी व्यथाको बहुत बढ़ा दिया वर्तमान लकवा रोगने। दो दिन तक उनका मन बड़ा चञ्चल रहा। उनके प्रस्थानका समय समीप जानकर मैंने अपनी संकल्पशक्तिसे उनके मनको एकाग्र किया। यह सन्तोषकी बात है कि मनकी शान्तिपूर्ण स्थितिमें उनका निधन हुआ।*

पूज्य बाबूजीके इन उद्‌गारोंको सुनकर सभी उपस्थित लोग श्रीमुरलीधरजीके भाग्यकी सराहना कर रहे थे। निधनके समय जिनका हाथ संतके हाथमें है और जिनके मंगलके लिये दो-दो संतोंकी संकल्पशक्ति सक्रिय है, उनके आत्यन्तिक हितके सम्बन्धमें संदेहके लिये स्थान ही नहीं रहा।

[६] पापसे कैसे बचें?

प्रसिद्ध रामभक्त एवं मानस मर्मज्ञ श्रीकपीन्द्रजीके साथ पूज्य बाबूजीका दीर्घकालीन आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध था। दोनों महापुरुषोंका जब मिलन होता था, तब एक दूसरेका एक दूसरेको नमन करना, आदर देना तथा अत्यन्त स्नेहसे गले लगाना देखते ही बनता था। जब श्रीनन्दाजी रेलवे मंत्री थे, तब उन्होंने रेलवेमें हो रही भीषण चोरीको रोकनेके लिये एक कमेटी बनायी और श्रीकपीन्द्रजीको उन्होंने इस कमेटीका उप-प्रधान बनाया।

सन् १९७० के नवम्बर मासके द्वितीय सप्ताहकी बात है। श्रीकपीन्द्रजी महाराज इस अभियानके सिलसिलेमें वाराणसी आये थे। पूज्य बाबूजी उन दिनों ज्यादा बीमार थे, अतएव वे पूज्य बाबूजीसे मिलनेके उद्देश्यसे गोरखपुर भी पधारे। श्रीकपीन्द्रजीने सामान आदि स्टेशनपर रखा और पूज्य बाबूजीसे मिलने अचानक गीतावाटिका आ पहुँचे। पूज्य बाबूजीने चारपाईसे उतरकर बड़े ही आदर एवं स्नेहसे उनका स्वागत किया और नीचे फर्शपर बिछे हुए कम्बलपर ही उनके साथ बैठ गये। कुशल मंगल आदि पूछ लेनेपर श्रीकपीन्द्रजीने बतलाया– आज ही एक डीजल इंजनका उद्‌घाटन करने मुगलसराय जा रहा हूँ। वहाँके मालगोदाममें भीषण रूपसे चोरी होती है। उसका भी निरीक्षण करना है। वहाँ चोरीके प्रति लोगोंको सतर्क-सावधान करनेके लिये एक मीटिंगमें भाषण भी देना होगा। भाईजी! अब मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि यह

चोरी कैसे रुके ? इसके लिये मीटिंगमें क्या उपाय बतलाया जाय ?

पूज्य बाबूजीने कहा— *जब मनुष्यको एकान्तमें पापसे घृणा होती है, तब वह पापसे बच सकता है। अर्जुनके पास रात्रिके एकान्तमें उर्वशी पहुँचती है और प्रणयकी भिक्षा माँगती है, पर उस अवस्थामें भी अर्जुनका मन विचलित नहीं होता, अपितु वे उर्वशीको माँ कहकर उसका आदर करते हैं। उर्वशी स्पष्ट शब्दोंमें प्रणयकी भीख माँगती है, पर अर्जुन सर्वथा अविचलित रहते हैं अपने धर्मपर। उर्वशीको इसमें अपना अपमान अनुभव होता है। वह क्रुद्ध होकर अर्जुनको शाप देती है, पर इसपर भी अर्जुन अडिग रहते हैं। इसी प्रकार जब एकान्तमें मनुष्यको पापसे घृणा होगी, उससे वह बचना चाहेगा, तभी चोरी रुक सकेगी। कानूनके भयसे चोरी नहीं रुक सकती। कानूनसे बचनेके नये-नये तरीके निकाल लिये जाते हैं और मनुष्य खूब चोरी करता है। आज यही हो रहा है, इसीसे सब ओर चोरीका बोलबाला है।*

श्रीकपीन्द्रजी पूज्य बाबूजीकी यह बात बड़े मनोयोगसे सुन रहे थे। उन्हें लग रहा था कि पूज्य बाबूजी अपने जीवन भरका अनुभव इन शब्दोंमें उनके सम्मुख रख रहे हैं। उन्होंने कहा— *भाईजी ! आपने पापके मूलको पहचाना है। मूलको सुधारनेसे ही पाप रुक सकता है, अन्यथा पापको रोकनेकी बातें होती रहेंगी और पाप भी बराबर होते रहेंगे।*

[७] श्रीगुरुजी एवं श्रीबाबूजी

मेरा अनुमान है कि परम पूज्य श्रीगुरुजी (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके द्वितीय सर-संघचालक पूज्य श्रीमाधवराव सदाशिवजी गोलवलकर) का शुभागमन वर्ष या दो वर्षकी अवधिमें एक बार गोरखपुर अवश्य ही होता रहा है। जब-जब श्रीगुरुजीका गोरखपुर शुभागमन हुआ है, तब-तब उनकी भेंट पूज्य श्रीबाबूजी ('कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादक पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से होती ही थी। कभी पूज्य बाबूजी श्रीगुरुजीके दर्शन हेतु आदरणीय श्रीबालाबाबूके घर जाते थे और कभी श्रीगुरुजी पूज्य बाबूजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका पधारते थे। गीतावाटिकामें पूज्य बाबूजीसे श्रीगुरुजीकी बात प्रायः एकान्तमें ही होती थी। कमरेके अन्दर ये महज्जन रहते थे और मैं कमरेके बाहर खड़ा रहता था। खड़े रहनेका उद्देश्य यह था कि उस पारस्परिक वार्तालापमें किसी प्रकारकी कोई बाधा उपस्थित न हो। बातचीतका यह क्रम कभी-कभी तो बहुत देरतक भी चला करता था।

श्रीगुरुजीसे बातचीत हो चुकने के बाद जब हमलोग पूज्य बाबूजीके पास बैठते थे तो वे श्रीगुरुजीकी सराहना करते हुए थकते नहीं थे। उनकी आन्तरिक मान्यता थी कि श्रीगुरुजी एक महान आध्यात्मिक विभूति हैं एवं उनके संतत्वसे हिन्दू समाज गौरवान्वित हुआ है। पूज्य बाबूजीके कथनानुसार श्रीगुरुजी मुख्यतः अध्यात्म-चर्चा ही किया करते थे। पूज्य बाबूजीके मुख मण्डलकी असीम प्रसन्नता ही संकेत करती थी कि वह चर्चा अवश्य ही गहरे स्तरकी रही होगी। ईश्वरकी सत्ता और भक्तिकी महत्ता, भारतीय धर्माचार्योंके जीवनकी उच्चता, उनके धर्म-कार्योंकी श्रेष्ठता, सभी उपासना-प्रणालियोंकी भिन्नतामें परिव्याप्त एकात्मता, धर्म-ग्रन्थोंके प्रकाशन एवं प्रचारकी आवश्यकता, मन्दिरोंके नव-निर्माण एवं जीर्णोद्धारकी उपयोगिता, गोवंशकी सुरक्षाकी अनिवार्यता आदि-आदि विषयोंपर तो विस्तारसे बात होती ही थी, कभी-कभी चिन्ता भी व्यक्त हो उठती थी समाजकी वर्तमान परिस्थितिको

देखकर। विभिन्न मतोंका अनुसरण करने वाले सतों-महन्तोंमें हानिकारक वृथा गर्वबोध, विद्यालयोंमें धर्म-शिक्षाकी उपेक्षा, लोगोंके मध्य और विशेषतः नेतृत्व वर्गके मध्य आध्यात्मिक-भौगोलिक-ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक एकत्वकी विस्मृति, धर्म-निरपेक्षताकी भ्रान्त धारणा एवं सदोष व्याख्या, प्रशासनकी धर्मके प्रति अवहेलनापूर्ण नीतियाँ, सर्व-धर्म-समादरके नामपर राजकीय आत्म-विघातक निर्णय, शान्ति-सहिष्णुता- समन्वयके सिद्धान्तपर ऐतिहासिक घटनाओंका विकृत प्रस्तुतीकरण, प्रचलित पत्र-पत्रिका-पुस्तकोंद्वारा जन-मानसपर क्षुद्र संस्कार आदि ये चिन्तापूर्ण तथ्य भी उनके विचार-विनिमयके कभी-कभी विषय बन जाया करते थे।

श्रीगुरुजीके लेख प्रायः 'कल्याण' पत्रिकामें प्रकाशित होते रहे हैं। जब-जब किसी विशिष्ट विषयपर 'कल्याण'का विशेषांक जनवरीमें प्रकाशित होता था, पूज्य बाबूजी श्रीगुरुजीसे लेख भेजनेके लिये अनुरोध किया करते थे और श्रीगुरुजीने उस अनुरोधको अपनी अस्वस्थता एवं व्यस्तताके बाद भी सदैव पूर्ण आदर प्रदान किया। इन दोनों विभूतियोंका आत्मीयता-भाव इतना घनिष्ठ था कि पूज्य बाबूजीद्वारा निवेदन किये जाने मात्रसे ही श्रीगुरुजीने गोरक्षा हेतु प्रकल्पित महाभियानकी सर्वोच्च नियन्त्रणकारिणी समितिकी सदस्यता स्वीकार कर ली और उन्होंने इस गोरक्षा आन्दोलनमें सोत्साह सक्रिय भाग लिया। गोरक्षा आन्दोलनका रूप जैसा विशाल और व्यापक था, उसका अधिकांश श्रेय श्रीगुरुजीको और उनके स्वयंसेवकोंको है। श्रीगुरुजीके सुझावपर पूज्य बाबूजीने गीताप्रेससे कई ऐसी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की थीं, जो हिन्दू धर्म एवं समाजके लिये बड़ी उपयोगी थीं।

पूज्य बाबूजीके महाप्रस्थानके उपरान्त जब श्रीगुरुजी ४ जनवरी १९७२ को गोरखपुर आये तो उन्होंने कहा था— *'कल्याण' एवं गीताप्रेसके माध्यमसे श्रीपोद्दारजीने हिन्दू धर्म एवं हिन्दू समाजकी जो सेवा की है, वह अद्भुत है। 'कल्याण' एवं गीताप्रेस श्रीपोद्दारजीके कीर्तिस्तम्भ हैं। इस कार्यमें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आनी चाहिये। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसकी उन्नतिमें समाजका हित संनिहित है एवं श्रीपोद्दारजीके यशका उत्कर्ष है। यह प्रतिष्ठान निर्बल न होने पाये, ऐसी सावधानी रखनी चाहिये।*

मैं तो ऐसा मानता हूँ कि यदि श्रीगुरुजी कर्म-योगके पथका अनुसरण कर रहे थे तो पूज्य बाबूजी भक्ति-योगके पथका। पथकी भिन्नता होते हुए भी दोनोंके उद्देश्यमें एकता थी। दोनों ही अपनी-अपनी रीतिसे हिन्दू धर्म एवं मानव समाजके हितके लिये कार्य कर रहे थे। उद्देश्यकी एकताके कारण ही इन दोनों विभूतियोंके पारस्परिक सम्बन्ध अति प्रगाढ़ थे।

[८] वे गुप्त अनुष्ठान

इस बातको प्रायः लोग जान गये हैं कि पूज्य बाबूजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के द्वारा गुप्त सहायता बहुत अधिक रूपमें दी जाया करती थी। दी जाने वाली सहायता इतनी अधिक गुप्त हुआ करती थी कि डा. श्रीभुवनेश्वर नाथजी 'माधव'के कथनानुसार बायें हाथ तकको पता नहीं रहता था कि दाहिना हाथ किस-किसको क्या-क्या दे रहा है। इस गुप्त सहायतासे न जाने कितने अगणित लोगोंको अपने-अपने दुःख-दर्दसे विमुक्ति मिली है। गुप्त रूपसे सहायता देनेकी जो प्रवृत्ति पूज्य बाबूजीकी थी, उसकी जानकारी अब लोगोंको कुछ-कुछ

होने लग गयी है। जिनको सहायता मिली, उनका कृतज्ञ हृदय कबतक छिपाये रखता? भावभरे हृदयने रहस्यको व्यक्त करना आरम्भ कर दिया।

गुप्त सहायताकी गोपनीयता, अब एक गोपनीय तथ्य नहीं रह गया है, परंतु गुप्त सहायतासे भी बढ़कर कुछ ऐसे भी गोपनीय कार्य हैं, जिनकी भनक शायद ही किसीको हो। इन गोपनीय कार्योंका रहस्योद्घाटन कभी सम्भव है ही नहीं। उनकी ओर केवल कुछ संकेत मात्र किया जा सकता है।

इन गोपनीय कार्योंके स्वरूपको समझनेके लिये एक उदाहरण लें। एक तीर्थ-स्थानका कोई अति विख्यात सन्त अथवा महन्त है। समाजके लोग उन्हें बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं और अनेक लोग उनमें अत्यधिक श्रद्धा रखते हैं। ऐसे श्रद्धेय महज्जनसे यदि कोई च्युति हो जाये, तब तो लोगोंकी धर्मपरसे आस्था ही डिग जायेगी। फिर कौन भगवानकी भक्ति करेगा, कौन देवी-देवताओंको मानेगा, कौन तीर्थों-मन्दिरोंमें जायेगा, कौन संतोंको सम्मान देगा, कौन साधुओंकी सेवा करेगा?

यह च्युति कई प्रकारकी और कई स्तरकी स्थूल और सूक्ष्म रूपसे हो सकती है। यदि कभी पूज्य बाबूजीके ध्यानमें यह बात आ जाती थी कि किसी महान श्रद्धेयके जीवनमें किसी च्युतिकी आशंका है तो पूज्य बाबूजी तुरन्त गुप्त अनुष्ठान बैठा दिया करते थे, जिससे उनके जीवनमें पथ-च्युतिका प्रसंग घटित ही नहीं हो। इतना ही क्यों, स्वयं पूज्य बाबूजी उनके मंगल भविष्यके लिये भगवानसे चुपचाप प्रार्थना किया करते थे। जिनके हितके लिये इन गुप्त अनुष्ठानों और मूक प्रार्थनाओंका क्रम चलता था, उन महज्जनोंको भी इन सबकी जानकारी नहीं हुआ करती थी। इस प्रकारकी न जाने कितनी गुप्त अर्चनाएँ पूज्य बाबूजीके द्वारा सम्पन्न हुई हैं और इन अत्यन्त गुप्त ईश्वराराधनका सुन्दर लाभ उन-उन महज्जनोंको प्राप्त भी होता था।

जिन-जिन महज्जनोंके लिये यह सब कार्य गोपनीय रूपसे हुआ, उनमेंसे कुछका तो पूज्य बाबूजीके साथ बड़ा निकट सम्पर्क होता था और किन्हीं-किन्हींसे साधारण परिचय मात्र। जिन महज्जनोंसे बड़ी घनिष्ठता होती थी, उनमेंसे कोई-कोई कभी-कभी एकान्तमें पूज्य बाबूजीको प्यारमें भरकर बताया भी करते थे कि किस प्रकार च्युतिसे उनका बचाव हो गया। उसे सुनकर पूज्य बाबूजी एक मधुर मुस्कान बिखेर दिया करते थे और उन महज्जनोंके भगवद्विश्वासको परिपुष्ट करनेके लिये पूज्य बाबूजी यही कहा करते थे— आपपर भगवानकी बड़ी कृपा है, जिसने आपके जीवनको पंकिल होनेसे बचा लिया।

पूज्य बाबूजीने कभी भी, अपवादस्वरूप भी यह तथ्य प्रकट होने नहीं दिया कि उनकी सुरक्षाके लिये कोई आराधना मेरे द्वारा सम्पन्न हुई है। इस प्रकारके गुप्त अनुष्ठान करवानेकी प्रवृत्ति जिनके जीवनमें सर्वदा रही और ऐसे गुप्त अनुष्ठानोंके सम्पन्न हो जानेके बाद उनकी अभिव्यक्ति जिनके द्वारा कभी नहीं हुई, उन लोकोत्तर-चरित्र-मूर्ति पूज्य बाबूजीके व्यक्तित्वकी महान अद्भुतताके बारेमें मैं जब-जब सोचता हूँ, तब-तब मैं हर बार यही पाता हूँ कि मेरे महाश्चर्यके पंख थकित हो जाते हैं और उस महाकाशका अनन्त विस्तार मेरे लिये अन-मापा, अन-समझा, अन-जाना ही रह जाता है।

[१] सेवाका आदर्श

देशके प्रायः सभी भागोंसे पूज्य बाबूजीके पास प्रतिदिन अनेकों पत्र ऐसे व्यक्तियोंके आते थे, जो अपने या अपने परिवारकी चिकित्साके लिये, परीक्षाकी फीस देने या पुस्तकें खरीदनेके लिये, बच्चोंके अन्न-वस्त्रकी व्यवस्था करनेके लिये, कन्याके विवाहके लिये, अपनी गायोंके लिये अन्न-घासकी व्यवस्था करने आदि कार्योंके लिये उनसे आर्थिक सहयोगकी प्रार्थना करते थे। उन पत्रोंको पूज्य बाबूजी स्वयं पढ़ते और यथासमय सहायता भिजवानेका प्रयत्न करते थे, किसीको मनीआर्डर द्वारा, किसीको बीमाद्वारा। प्रतिदिन अनेकों व्यक्ति उनके यहाँ पधारकर अपनी माँग रखते थे और उनमेंसे एक भी खाली हाथ नहीं लौटता था। पूज्य बाबूजी सभीकी कुछ-न-कुछ सेवा करके ही विदा करते थे।

यह उदारतापूर्ण सेवावृत्ति पूज्य बाबूजीमें जीवनके आरम्भसे ही थी। जब वे व्यवसाय करते थे, तब भी उनका स्वभाव इसी प्रकार उदार एवं सेवामय था। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसकी सेवाओंमें लगनेके पश्चात् तो उनके शरीरका एक-एक कण और जीवनका एक-एक श्वास विश्वरूप प्रभुकी सेवामें नियोजित रहा। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा वे ज्ञानका तो मुक्तहस्तसे वितरण करते ही थे, साथ ही वे भौतिक पदार्थों-साधनोंद्वारा 'आर्त-नारायण' की सेवा करनेमें निरन्तर संलग्न रहते थे। अन्तिम बीमारीमें भी जबतक उनमें कुछ शक्ति रही, वे अपने नाम आये अभावग्रस्त व्यक्तियोंके पत्र स्वयं पढ़ते-सुनते रहे और अपने स्वजनोंके द्वारा उन्हें सहायता भिजवाते रहे। यह क्रम १३ मार्च १९७१ तक चलता रहा। लगता है, उस दिन पूज्य बाबूजीको यह अनुभव हो गया था कि अब उनका शरीर भगवानके विधानानुसार रहनेका नहीं है और अब उनमें बोलने, ठीकसे संकेत करनेकी भी क्षमता अवशेष नहीं रह गयी थी। अतएव उस रात्रिमें उन्होंने अपने सेवाके हिसाबकी कापियाँ नष्ट करवा दी एवं जो धन-राशि अवशेष थी, उसकी वितरण सूची लिखवा दी। इसके पश्चात् उन्होंने बड़े विनम्र शब्दोंमें अपने परिवार एवं स्वजनोंको सेवा-भावनाओंको अक्षुण्ण रूपमें अपनाये रखनेके लिये प्रेरित करते हुए अपने सेवा-आदर्शका स्वरूप संक्षेपमें बताया—

गोरखपुर आने के पश्चात् (सन् १९२७ से) अर्थकी दृष्टिसे मैं निःस्व रहा हूँ। न मेरे पास अपना एक पैसा है, न कहीं कुछ जमा है, न मैंने कुछ कमाया है। गीताप्रेस, 'कल्याण' या अन्य किसी भी संस्थासे मेरा आर्थिक सम्बन्ध नहीं रहा है। न मैंने भेंट-पूजा-उपहारके रूपमें किसीसे भी एक पैसा कभी लिया है। अवश्य ही मेरे द्वारा विभिन्न संस्थाओंकी, भूकम्प-बाढ़-अकाल-अग्निदाह आदि दैवीप्रकोपोंसे पीड़ित प्राणियोंकी एवं विधवा बहिनोंकी सहायतामें प्रचुर अर्थ व्यय हुआ है (कई करोड़ रुपये अबतक व्यय हो चुके होंगे) पर वस्तुतः उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। यह सब हुआ है उन लोगोंके भाग्यसे और दाताओंके भगवत्प्रेरित या स्वेच्छाप्रेरित दानसे। इसके लिये भी किसीपर दबाव डालनेकी बात ही नहीं। मैंने न तो किसीसे माँगा हैं, न अपील की है, वरं परिस्थितिवश कभी-कभी दानकी रकम पूरी-की-पूरी या अधूरी वापिस कर दी है। जब 'भारतीय चतुर्धाम-वेद-भवन-न्यास' का निर्माण हुआ और उसके लिये दानहेतु अपील प्रकाशित हुई, तब उसमें सब ट्रस्टियोंके साथ मेरा नाम था। मैंने अपना नाम भी निकलवा दिया, तब उन पत्रोंको भिजवाया। मैंने कभी अर्थके लिये की जानेवाली अपीलमें

अपना नाम नहीं दिया है। इस प्रकारकी सहायताके लिये जो पैसे आते थे, उनका मैंने एक-एक पैसेका हिसाब रखा है किसकी सेवामें वे पैसे लगे, वह भी बराबर लिखता रहा हूँ। तीन वर्षतक उस हिसाबको रखता था। तीन वर्षके पश्चात् उस हिसाबको नष्ट कर डालता था। कहाँसे पैसा आया, किस-किसको दिया गया, इसको मैंने यथासम्भव किसीपर प्रकट नहीं होने दिया। मनीआर्डर-बीमा जिन स्वजनोंके मार्फत करवाता था, उन्हें भी यथासम्भव नाम ज्ञात नहीं होने देता था। कारण, मैंने जिसको जो कुछ दिया है, वह भगवद्भावसे दिया है। वह मेरी अर्चाका एक स्वरूप रहा है। जिस कार्यके लिये जितने पैसे प्राप्त होते थे, उस कार्यमें उतने पैसे अवश्य लगा देता था। चेष्टा तो यह रखता था कि उसमें कुछ अपने पाससे भी सम्मिलित कर दूँ। मेरे पासका अर्थ है— मेरे ऐसे साथी, ऐसे स्वजन, जिनका मुझसे कोई अलगाव न रहा हो।

[१०] समझानेकी स्नेहसनी रीति

प्रिय चन्द्रकान्त पूज्य बाबूजीका दौहित्र है। उसने नयी मोटरकार खरीदी। उसकी चाह थी कि उस कारमें सबसे पहले नानाजी बैठें। प्रिय चन्द्रकान्तने अपने नानाजीसे अनुरोध किया— मैंने नयी कार ली है। आपको ही मैं सबसे पहले बैठाना चाहता हूँ, जिससे आपके आशीर्वादसे शुभ-ही-शुभ हो।

पूज्य बाबूजीने उससे कहा— मैं अब वृद्ध हो चला हूँ और जैसे मैं धीमे-धीमे चलता हूँ, वैसे ही मेरा आशीर्वाद भी अब धीमे-धीमे चलेगा। यदि तुम्हारे कारकी चाल मेरे आशीर्वाद की चालके अनुसार रहेगी, तब तो मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा और यदि तुमने जल्दबाजी में कारकी रफ्तार तेज कर दी और आशीर्वादको पीछे छोड़ दिया तो वह आशीर्वाद भला क्या कर पायेगा?

कितने विनोदके स्वरमें प्यार भरी रीतिसे पूज्य बाबूजीने अपने दौहित्र चन्द्रकान्तको समझा दिया कि कारको तेज रफ्तारसे चलानेमें खतरा ही है।

[११] अन्न-संकटका निवारण

भगवन्नाम-वितरक श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जन्मभूमि होनेके कारण नवद्वीपका विशेष महत्त्व है। नवद्वीपके भजनाश्रममें अनके महिलाएँ भगवन्नामका कीर्तन करती हैं। भगवन्नाम-परायणा इन बंगीय माताओंको एक बार खाद्य-संकटका सामना करना पड़ गया। इनका मुख्य भोजन चावल है और नवद्वीपमें चावलका अभाव हो गया। अन्न-संकटका समाचार मिलते ही पूज्य बाबूजीने अपने एक सम्माननीय स्वजनको पत्र लिखा—

यह पत्र एक विशेष कामसे लिख रहा हूँ। नवद्वीप भजनाश्रममें माताओंको चावल दिया जाता है, पर यहाँ चावल मिल नहीं रहा है। इससे बड़ी कठिनाई हो रही है। बर्दवानमें गवरमेंटके गोदाममें बहुत चावल है। यदि कलकत्तेके उच्च-अधिकारी अनुमति दें तो वहाँसे चावल मिल सकता है। इस सम्बन्धमें कलकत्ताके डाइरेक्टर आफ फूडको पत्र भजनाश्रम (नवद्वीप) की ओरसे दिया गया है, जिसकी नकल इसके साथ भेजी जा रही है। यदि हो सके तो ये चावल दिलवाने और मासिक मिल जानेकी व्यवस्था करवानेकी कृपा करें।

पूज्य बाबूजीके प्रयत्नसे नवद्वीपके भजनाश्रमका यह अन्न-संकट शीघ्र ही दूर हो गया।

[१२] उनका कार्यरत जीवन

पूज्य बाबूजीका दैनिक जीवन बड़ा ही व्यस्त था। प्रायः प्रातः चार बजेसे रात्रिके बारह बजेतक वे कार्य करते रहते थे। 'कल्याण'के विशेषांकके दिनोंमें तो बहुधा उन्हें रात्रिके डेढ़-डेढ़, दो-दो बजेतक कार्य करते देखा गया है। वे अपने कागज-पत्र अपने तकियेके नीचे तथा आस-पास रखे रहते थे और जब सोना हुआ, तब वहीं सो जाते थे। भोजनके समय भोजन आनेमें कुछ विलम्ब हुआ तो पुनः काम करने लग जाते थे। भोजन करते समय एक हाथसे डाक उलटते रहते थे। भोजनके उपरान्त विश्राम करते समय लेटे-लेटे या करवट लिये काम करते रहते थे। बीमारीके दिनोंमें पेटपर मिट्टीकी पट्टी रखते थे। उस अवस्थामें भी वे प्रूफ देखने तथा पत्र लिखनेका कार्य किया करते थे। यात्रामें ट्रेनके रवाना होते ही प्रूफ-पत्र निकाल कर बैठ जाते थे। प्लेनसे यात्रा करते समय पत्र लिखनेमें व्यस्त रहते थे। स्वजनोंके यहाँ उत्सव या विवाह-शादीमें जाते समय प्रूफ अपने साथ ले जाते थे और जब भी थोड़ा अवकाश मिला, एक ओर बैठकर काम करने लग जाते।

सायंकाल लगभग साढ़े छः बजे डाक एवं प्रूफ आया करते थे। डाकके आते ही उनका कार्यालय चालू हो जाता। जितना प्रूफ आता, वह प्रातःकाल तैयार होकर प्रेस चला जाता, चाहे उसके लिये उनको रात्रिमें अधिक जगना पड़े। लेखोंमें जो भी श्लोक या उद्धरण होते, उनको वे स्वयं मूलग्रन्थोंसे मिलाते और जिन श्लोकोंकी पंक्तियाँ अधूरी रहतीं, उन्हें पूरी करते। ग्रन्थका नाम, अध्याय और श्लोक संख्या बैठाते, जिससे पाठक कुछ देखना चाहें तो उस संदर्भसे आसानीसे देख सकें। प्रायः लेखक स्मृतिके आधारपर चौपाइयाँ-श्लोक आदि लिख देते, जो मूलसे कुछ-न-कुछ भिन्न होते। उन्हें वे स्वयं ठीक करते।

मिलने आनेवाले व्यक्तियोंका हाथ जोड़कर मधुर मुस्कानके साथ स्वागत करते। आनेवाला व्यक्ति यदि सुपरिचित होता तो उसे कह देते कि तुम अपनी बात कहते चलो और स्वयं प्रूफ देखने एवं पत्र लिखनेमें लग जाते। पहले लगता कि उनका मन अपने कार्यमें व्यस्त है, कहने वाला अपनी बात कहता जा रहा है, पर जब उसकी बातका सही उत्तर, वह भी विचारकर निश्चित किया हुआ दिया जाता, तब आश्चर्य होता कि किस प्रकार विचारने तथा सुननेकी दोनों क्रियाएँ उनके लिये एक साथ सम्भव थीं। अपने किसी भी सहयोगीके किये हुए कामको बिना सरसरी नजरसे देखे वे नहीं भेजते थे। अपने दायित्वका पूरा निर्वाह करते थे। 'कल्याण'के मूल लेख देखते, गैली प्रूफ देखते तथा पेज-प्रूफ देखते, इस प्रकार तीन बार पूरी सामग्री उनकी नजरसे गुजरती थी।

समयका वे अमूल्य निधिकी भाँति उपयोग करते थे। किसीको जो समय दे देते थे, उसका निर्वाह बड़ी तत्परतासे करते थे। कई बार देखा गया कि सभाओंमें वे समयसे पहुँच जाते और वहाँ कोई भी नहीं मिलता। सभी लोग आधा घंटा, एक घंटा बाद आते। साथी लोग कहते कि हम लोगोंको भी देरसे चलना चाहिये, पर वे स्वीकार नहीं करते। उनका उत्तर यही रहता— जो समय निर्धारित हुआ है, उसपर पहुँच जाना चाहिये और लोग आयें, चाहे न आयें।

गाड़ीपर समयसे कुछ पूर्व पहुँचनेकी चेष्टा रखते थे तथा दूसरोंको भी यही शिक्षा देते थे कि समयसे पहुँचकर गाड़ीपर सवार होना चाहिये। यह नहीं कि इंजन सीटी दे रहा है और आप

सवार हो रहे हैं।

जहाँतक होता, अपने व्यक्तिगत पत्रोंका उत्तर वे स्वयं देते और वह भी अपने हाथसे लिखकर। सहायताके पत्र तथा दुःखी व्यक्तियोंके पत्रोंका उत्तर तो वे किसी दूसरेसे लिखवाते ही नहीं थे। ऐसे पत्र वे स्वयं चिपकाते भी थे। वैसे भी पत्रोंके चिपकानेमें वे बहुत सावधान थे। गोंद-पानी इस प्रकार लगाना, जिससे पत्रपर कहीं धब्बा या दाग न लग जाय, इसका वे विशेष ध्यान रखते थे। जब कोई पासमें बैठा स्वजन कहता कि लाइये पत्र मैं चिपका दूँ, तब वे उसे एक पत्र चिपकाकर समझाते कि इस प्रकार सफाईसे पत्र चिपकाइये। इतना ही नहीं, इसके साथ वे श्रीमालवीयजी महाराजका एक संस्मरण सुना देते कि किस प्रकार महामनाजी पत्रोंको चिपकानेमें सावधानी बरतते थे। महामना अपने इस कार्यके लिये श्रीशिवप्रसादजी गुप्तके अतिरिक्त अन्य किसीपर विश्वास नहीं करते थे।

आनेवाले पार्सलोंको खोलनेमें वे बड़ी सावधानी बरतते। पार्सलपर बँधी हुई रस्सीकी गाँठको खोलना और उसे समेटकर रखना, इनका सहज स्वभाव था। पार्सलपर लगा हुआ कपड़ा भी वे बड़े जतनसे सहेजकर रखते थे और उसे अपनी कलमको पोंछने आदिके काममें लेते थे। इसी प्रकार पुरानी आलपिन-क्लिपोंको भी बहुत सँभालकर रखते थे। कागजके छोटे-छोटे सादे टुकड़ोंको भी सँभालकर रखते थे। डाकमें आनेवाले पुराने लिफाफोंको सँभालकर एक बड़े लिफाफेमें रख लेते थे और प्रेस सामग्री भेजते समय उनका उपयोग करते थे। साथी लोग उन्हें उन कामोंके लिये नये लिफाफे देते, पर वे स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार पूज्य बाबूजी अपने अत्यन्त व्यस्त जीवनमें भी छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देनेसे नहीं चूकते थे। ■

श्रीरामगोपालजी पालड़ीवाल

[१] पत्नीकी रोग विमुक्ति

सन् १९६७ अथवा ६८ के जाड़ेके दिन थे, पर यह याद नहीं कि कौन-सा-उत्सव गीतावाटिकामें मनाया जा रहा था। शायद वसंत पंचमीकी बात हो सकती है। उत्सव हेतु कुछ लोग बाहरसे भी आये हुए थे। मैं कोठीके बाहर बेंचपर बैठा हुआ था। बिहार प्रदेशके खगड़ियासे एक पत्र मेरे पास आया। पत्रमें लिखा था कि मेरी पत्नीको टिटनस नामक रोग हो गया है, अतः मुझे तुरन्त खगड़िया पहुँच जाना चाहिये। आयुर्वेदमें टिटनसको धनुष-टंकार कहते हैं और इसे बड़ा घातक रोग माना गया है। पास ही कलकत्तेके मेरे मित्र श्रीदाऊलालजी कोठारी बैठे हुए थे। मुझे पता नहीं था कि वे मेरे पत्रको पढ़ रहे हैं। मेरे पढ़नेके साथ-साथ उन्होंने भी पत्र पढ़ लिया।

खगड़िया जानेका मेरा कोई कार्यक्रम नहीं था। पत्रको पढ़कर मेरा मन उदास हो गया। यह समाचार ही ऐसा था कि खगड़िया जानेका मेरा कार्यक्रम अचानक बन गया। ट्रेन रात्रिको लगभग नौ बजे जाती थी। मैं आठ बजे पूज्य श्रीभाईजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)को प्रणाम करनेके लिये ऊपर उनके कमरेमें गया। श्रीभाईजी रजाई ओढ़े हुए बिस्तरपर लेटे हुए थे। मुझको देखकर उन्होंने पूछा— कैसे आये ?

मैंने कहा— खगड़िया जा रहा हूँ। प्रणाम करने आया हूँ।

श्रीभाईजीने पुनः पूछा— अचानक कार्यक्रम कैसे बन गया?

मैं कुछ बोला नहीं। मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरे मौनको देखकर श्रीभाईजीने मन-ही-मन समाधान कर लिया होगा कि कोई आवश्यक कार्य सामने आ गया है। उस समय संयोगसे श्रीदाऊलालजी कोठारी वहीं थे। श्रीभाईजी द्वारा जिज्ञासा किये जानेपर मैं तो कुछ बोला नहीं, पर श्रीकोठारीजी बोल पड़े— बाबूजी! भाभीकी तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो गयी है, वे टिटनससे ग्रस्त हैं, इसलिये गोपाल भइया खगड़िया जा रहे हैं।

इतना सुनते ही श्रीभाईजी खाटपर उठकर बैठ गये और मुझसे पूछा— उसे टिटनस हो गया है?

मैंने बताया— पत्रमें तो यही लिखा है कि उसे टिटनस हो गया है। वे लोग उसे लेकर चिकित्साके लिये पटना जा रहे हैं।

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजीने आँखें मूँद लीं और दो-तीन मिनट तक मौन रहे। इसके बाद उन्होंने अपने हाथसे पैरोंपरसे रजाई हटा लीं। दोनों पैर जुड़े हुए थे। रजाई हटाते-हटाते उन्होंने मुझसे कहा— ले, प्रणाम कर और घबड़ाना नहीं। भगवान सब मंगल करेंगे। वहाँ जाकर सब समाचार विस्तारसे देना।

खगड़िया पहुँचनेपर मालूम हुआ कि मेरी धर्मपत्नीकी स्थिति काफी गम्भीर थी। पटनामें चिकित्सा करानेके लिये घरके लोग उसे ले गये। कारमें उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी। पटना पहुँचनेमें अभी समय लगेगा और इस अवधिमें स्थिति और भी भयानक हो सकती है, अतः खगड़िया और पटनाके बीचमें मुकामा नामका जो एक स्थान है, वहीं कार रोक करके उसे मिशनरी अस्पतालमें भरती करा दिया गया। उसके टिटनस रोगको देखकर डाक्टरोंने बताया— स्थिति चिन्ताजनक है और यदि स्थिति सँभल भी गयी तो पूर्ण स्वस्थ होनेमें समय लग सकता है।

जो भी हो, मिशनरी अस्पतालमें उसकी चिकित्सा आरम्भ हो गई। इतनी सब बातें मुझे खगड़िया पहुँचनेपर ज्ञात हुई। मैं खगड़ियासे मुकामा गया। वस्तुतः उसकी स्थिति गम्भीर थी। उसका मुँह खुल नहीं पाता था। ठोस खाद्य-वस्तुकी बात अलग रही, पेय पदार्थ भी कठिनाईसे गलेमें उतर पाता था। चिकित्सा ठीक प्रकारसे चल रही थी।

मैं किसी कार्यसे मुकामासे खगड़िया आया। खगड़िया आनेपर मुझे गोरखपुरसे आया हुआ एक पत्र मिला। उस पत्रमें श्रीभाईजीका संदेश था— तुम्हारी पत्नीके स्वास्थ्य-लाभके लिये यहाँ महामृत्युञ्जयका जप आरम्भ करा दिया गया है। यदि वहाँ कोई सात्त्विक अच्छा ब्राह्मण मिल जाये तो वहाँ भी जप आरम्भ करवा देना। अच्छा ब्राह्मण न मिले तो कोई बात नहीं। यहाँ तो जप आरम्भ करवा ही दिया गया है।

पत्रमें निर्देशके अनुसार मैंने खगड़ियामें जप आरम्भ करवा दिया। फिर मैं खगड़ियासे मुकामा आ गया। वहाँ अस्पतालमें जानेपर डाक्टरने मुझसे कहा— आपकी पत्नी एकदम ठीक हो गई है। इसे घर ले जाइये।

मैंने डाक्टरसे कहा— आप कैसी अटपटी बात कह रहे हैं? इसे अस्पतालमें भर्ती हुए कुल

सात दिन हुए हैं। जब इसको आपने भर्ती किया था, तब रोगके लक्षणको देखकर आपने कहा था कि इसके ठीक होनेमें कई सप्ताह लग जायेंगे और अब आप एक सप्ताहके अन्दर ही रोगीको स्वस्थ बता रहे हैं।

डाक्टरने कहा— जिस समय इस रोगीको भर्ती किया था, उस समय इसे टिटनसके रोगीके रूपमें ही भर्ती किया गया था क्यों कि इसी रोगके स्पष्ट लक्षण दिखायी दे रहे थे, पर अब इस रोगका कोई लक्षण या चिह्न दिखायी नहीं दे रहा है।

मैंने डाक्टरसे कहा— आप तो रोगीको घर वापस भेज रहे हैं, पर कहीं ऐसा न हो कि घरपर पुनः रोगका दौरा पड़ जाय, मुझे परेशान होना पड़े और फिर मुझे भागकर यहाँ आना पड़े।

डाक्टरने कहा— अब रोगीमें रोगके लक्षण हैं ही नहीं, तब हम उसे अस्पतालमें कैसे रख सकते हैं?

मैंने बहुत अनुरोध किया, इसके बाद भी उन्होंने अस्पतालमें मेरी पत्नीको नहीं रखा। अस्पतालसे बाहर आ जानेके बाद मैंने अपने संतोषके लिये मुकामाकी एक धर्मशालामें एक सप्ताहके लिये अपनी पत्नीको रखा। धर्मशालामें रहनेका प्रयोजन यही था कि डाक्टरकी बातसे मनमें सन्तोष नहीं हो रहा था। यद्यपि देखनेमें हम लोगोंको भी रोगके कोई लक्षण दिखलायी नहीं पड़ रहे थे और केवल दुर्बलता मात्र थी, इसके बाद भी एक सावधानीके रूपमें यह उचित समझा गया कि कुछ दिन मोकामामें ठहरना चाहिये। रोगका पुनः आक्रमण नहीं हुआ। लोग ऐसा कहते हैं कि टिटनसका रोगी कभी भी पूर्ण स्वस्थ नहीं होता। रोग चला जाता है, पर उसका असर रहता है। शरीरका कोई-न-कोई अंग बेकार हो जाता है, पर ऐसी विकलांगता भी मेरी पत्नीकी शरीरपर नहीं थी। भविष्यमें भी फिर कभी इस रोगका आक्रमण नहीं हुआ।

श्रीभाईजीने मेरी पत्नीके स्वास्थ्य-लाभके लिये महामृत्युञ्जयका जप करवाया था, उनकी प्रेरणाके अनुसार थोड़ा जप मैंने भी करवाया था। मेरी पत्नीकी रोग-मुक्तिमें जपका भी प्रभाव एक कारण तो है ही, पर इसीके साथ इससे भी महत्त्वपूर्ण कारण है श्रीभाईजीका आशीर्वाद। गोरखपुरसे चलते समय उन्होंने जो आश्वासन दिया था, आशीर्वाद दिया था, मुझसे पुनः प्रणाम करवाया था और स्वयं-प्रेरणासे मेरी पत्नीके लिये अनुष्ठान बैठाया था, इसीका परिणाम था कि वह इतना शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ कर सकी।

[२] भयंकर संकटके वे क्षण

प्रसंग सम्भवतः सन् १९६७ अथवा ६८ का है। सावनके बरसाती दिन थे। गंगाजीमें तथा बड़ी गण्डकमें बहुत बाढ़ आयी हुई थी। बाढ़ क्या थी, प्रलयका दृश्य था। बिहार प्रदेशके खगड़ियाके आस-पासका क्षेत्र बाढ़से ग्रस्त था। मुझे एक तार मिला कि बाढ़की स्थितिका विवरण मेरे पास भेजो। यह तो स्पष्ट था कि तार गोरखपुरसे आया है, पर भेजने वालेका नाम मेरे लिये सर्वथा अपरिचित था। मेरे छोटे भाई गोरखपुरमें रहते हैं। मैंने यही अनुमान लगाया कि मेरे भाइयोंने किसीको तार देनेके लिये कह दिया होगा। उत्तर स्वरूप मैंने पत्र अपने भाईके पास गोरखपुर लिख दिया कि बाढ़के कारण आस-पासके क्षेत्रमें बहुत परेशानी है। किन्तु रेडियो और समाचार-पत्रोंमें जितना खतरा खगड़िया शहरके लिये बताया जा रहा है, वैसा है नहीं।

मेरा पत्र गोरखपुर पहुँचा भी नहीं होगा कि दो दिन बाद पूज्य श्रीभाईजी (पूज्य

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का पत्र मुझे मिला। पत्रमें उन्होंने लिखा था– मेरा तार तुम्हें मिला होगा कि बाढ़का विवरण भेजो। मुंगेरसे श्रीखेमकाजीका पत्र मेरे पास आया है कि बाढ़के कारण यहाँ तबाही बहुत ज्यादा है। उन लोगोंने मुंगेर-क्षेत्रमें सहायता-कार्य आरम्भ कर दिया है। खेमकाजीके सुझावके अनुसार खगड़िया-क्षेत्रमें भी सहायता-कार्यकी बहुत आवश्यकता है। अब मुझे यह बतलाओ कि वहाँकी स्थिति क्या है और सहायता-कार्य कैसे किया जा सकता है।

श्रीभाईजीके पत्रके आनेसे ज्ञात हुआ कि तार उनके द्वारा भेजा गया था और तारघर द्वारा भेजनेवालेका नाम लिखनेमें कुछ गलती हो गयी थी। जो भी हो, यह सहायता-कार्य मुझे एक झंझटके समान लग रहा था। सर्वप्रथम बात यह थी कि इस प्रकारके कार्योंमें मेरा कोई अनुभव नहीं था। इसके अतिरिक्त ऐसे सेवा-कार्य करनेके लिये मेरे मनमें उत्साह नहीं था। मैं यह भी जान रहा था कि समाचारपत्रोंद्वारा स्थितिका चित्रण बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है और सरकारी स्तरपर थोड़ा-बहुत सहायता कार्य हो ही रहा है। इन सब बातोंके कारण सहायता-कार्यमें मेरी कोई रुचि नहीं थी, अतः कार्यके उत्तरदायित्वसे बचनेके लिये एक साधारण-सा पत्र पूज्य श्रीभाईजीको मैंने गोरखपुर भेज दिया।

मैंने पत्र पोस्ट किया ही था कि इसके दूसरे या तीसरे दिन मुझे एक पत्र श्रीभाईजीसे मिला, जिसमें लिखा था कि तुम्हारे पास पाँच हजार रुपया भेजा जा रहा है। बाढ़से पीड़ित लोगोंकी सहायता और सेवाका कार्य आरम्भ कर दो। आवश्यकता पड़नेपर और भी रुपया भेजा जा सकता है।

यह पत्र मेरे लिये एक आदेशके समान ही था। जिस सेवाकार्यको मैं झंझट मान रहा था और जिससे बचनेके लिये मैंने प्रयास भी किया, उसीका दायित्व मेरे सिरपर आ गया, न चाहते हुए भी आ गया। अब यह कार्य करना ही था। मैंने अपने पाँच-छः स्वजनोंसे इस सम्बन्धमें बात की। सबने उत्साहपूर्वक सहयोगका आश्वासन दिया। अन्नके वितरणद्वारा अन्य सेवादल बाढ़-पीड़ित लोगोंकी सेवा करते थे, अतः हमलोगोंने आवश्यकतानुसार कुछ अन्न देनेका निश्चय तो किया, पर हमारे सेवादलने मुख्यतः ध्यान केन्द्रित किया वस्त्र-वितरणकी ओर।

पहले तो हम लोग तीन-चार मीलकी परिधिके भीतर पड़नेवाले गावोंमें जाते थे और जैसा बन सकता था, लोगोंको अन्न-वस्त्र देते थे। पीड़ित-लोगोंको जो राहत मिलती थी, उसे देखकर मनमें एक विचित्र प्रकारके सात्त्विक संतोष और आनन्दका अनुभव होता था। इस प्रकारके अनुभवसे सेवाकार्यमें मन लगने लगा। पहले यह कार्य मुझे भारस्वरूप लगता था, पर अब मेरी मनःस्थिति बदल गयी थी। अब सेवाकार्य करनेमें मनका उत्साह बढ़ता ही जा रहा था। उत्साह-उत्साहमें हमलोग कीचड़-पानीमें मीलों-मीलोंतक पैदल चलते रहते थे। घरसे सबेरे निकलते थे और वापस सूर्यास्तके बाद आते थे। हमलोग जब बहुत दूरतक जाने लगे तो एक सज्जनसे जीप माँग ली। उसमें अन्न-वस्त्र भर लेते थे और सुदूर क्षेत्रोंमें जा करके वितरण करते थे। इस प्रकार सेवाकार्य करते हुए लगभग चार-पाँच सप्ताह निकल गये।

गोरखपुरका श्रीराधाष्टमी महोत्सव समीप था। पूज्य बाबाने मुझे नियम दिला रखा था कि राधाष्टमीके अवसरपर गोरखपुर अवश्य आ जाओ। मैंने अपने सहयोगी मित्रोंसे कहा– श्रीराधाष्टमीके अवसरपर मेरा गोरखपुर जाना नियमतः आवश्यक है। सन् १९५४ या ५५ से

मेरा नियम चला आ रहा है। मैं चार-पाँच दिनमें वापस आ जाऊँगा। इन दिवसोंमें आप लोग सेवाकार्यको करते रहें।

मेरे मित्रोंने गोरखपुर जानेके लिये प्रसन्न मनसे मुझे अनुमति दे दी। मैंने ट्रेनसे गोरखपुर जानेका कार्यक्रम बना लिया। मैं गोरखपुर जानेकी दृष्टिसे तैयारी कर ही रहा था कि गोरखपुरसे पूज्य श्रीभाईजीका लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला। उसमें उन्होंने लिखा था— *अब श्रीराधाष्टमी समीप है। श्रीराधाष्टमीपर आनेका तुम्हारा नियम है। तुम आनेके लिये तैयारी कर रहे होगे, पर यदि तुम मेरी बात मानो तो यहाँ न आकर वहीं रहते हुए पीड़ितोंकी सेवाका कार्य करते रहो। तुम लोगोंका कार्य बहुत ही सुन्दर हो रहा है। तुम विश्वास करो, श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें आनेसे जो लाभ तुम्हें होता, वह तुम्हें वहीं मिल जायेगा।*

इस पत्रके पानेके बाद गोरखपुर जानेका विचार मैंने छोड़ दिया और सेवाकार्यमें पूर्ववत् संलग्न हो गया। श्रीराधाष्टमीके दिन मैं बहुत दूर अपने साथियोंके साथ गया हुआ था। मध्याह्नतक कार्य करनेके बाद हम सभी लोग एक मैदानमें बैठकर भोजन कर रहे थे। ज्यों ही मध्याह्नके समय श्रीराधाजन्मका समय हुआ, मुझे एक विशेष प्रकारकी आध्यात्मिक सुखानुभूति हुई, जो कभी गोरखपुरमें भी नहीं हुई थी और जो मेरे लिये सर्वथा नवीन वस्तु थी। ऐसी दिव्यानुभूति वस्तुतः मुझे कभी नहीं हुई। तत्क्षण मुझे पूज्य श्रीभाईजीके पत्रकी पंक्तियाँ याद आने लगीं।

यह तो एक आध्यात्मिक अनुभव था, पर प्रत्यक्ष स्तरपर कई ऐसी घटनाएँ घटित हुईं, जिसमें भगवदीय कृपाके दर्शनका सुअवसर और सौभाग्य मिला। इसी दिन अथवा दूसरे या तीसरे दिन मैं और मेरे साथी जीपमें सामान लादकर जा रहे थे। मेरा ही एक साथी जीप चला रहा था और उसके बगलमें मैं बैठा हुआ था। हमारी जीप बाँधपर चल रही थी और बाँधकी चौड़ाई उतनी ही थी, जितनी जीपकी चौड़ाई। दायें-बायें दोनों ओर गहरी खाई थी। मेरा मित्र बहुत सावधानीपूर्वक जीप चला रहा था। अचानक एक बड़ा सीधा ढाल आया। तनिक-सी चूक होनेपर जीप खाईमें जा सकती थी। मेरे मित्रने मुझसे कहा— ढाल बहुत खड़ा है। सड़क रपटीली है। सड़कके दायें बायें वाले छोर मुझे दीख नहीं रहे हैं। आप उतरकर ढालके अंतिम नीचले छोरपर खड़े हो जाइये और निर्देश देते रहिये। उस निर्देशके अनुसार मैं जीप चलाऊँगा, जिससे हम लोग ढाल सकुशल पार कर लें।

मैं जीपसे उतरा और ढालके उतारवाले छोरपर खड़े होकर निर्देश देने लगा। जीप धीरे-धीरे चलने लगी। कुछ फीट ही चली होगी कि विकट परिस्थिति सामने आ गयी। मैं नहीं कह सकता कि निर्देश देनेमें मेरे द्वारा भूल हुई अथवा निर्देशको समझनेमें उसके द्वारा भूल हुई। परिस्थिति यह थी कि जीप भटक कर गड्ढेकी ओर चली गयी। जीपका एक अगला पहिया जमीनपर नहीं, हवामें था और जीप ढलानपर तीन पहियोंके सहारे धीरे-धीरे लुढक रही थी। यह देखकर ज्यों ही मैंने घबड़ाकर ठहरनेका निर्देश दिया, मेरे मित्रने जोरसे ब्रेक लगाया। ब्रेकके लगते ही जीप तो रुक गयी, पर स्थिति अत्यन्त विकट थी। अब न तो ब्रेक छोड़कर वह मित्र जीपके बाहर आ सकता था, न मालसे भरी हुई जीपको पीछे चढ़ावकी ओर वापस लिया जा सकता था और न जीपको आगे बढ़ाया जा सकता था। कालके पंजेमें पड़ा हुआ मेरा मित्र मुझपर बुरी तरह झुँझला

रहा था। ऐसा भयानक दृश्य देखकर मेरा रोम-रोम काँप उठा। दोनों ओर खाई थी और मित्रकी जान और जीप, दोनोंही भयंकर खतरेमें थे। कोई उपाय सूझ ही नहीं रहा था। आस-पास गाँव भी नहीं थे, जहाँसे सहायताकी अपेक्षा करता। मेरे आँखोंके सामने घोर अँधेरा छा गया। इस अति विकट परिस्थितिमें मैंने श्रीभाईजीको और भगवानको याद किया। एक-एक क्षण बड़ा भारी लग रहा था, बड़ा कठिन बीत रहा था। दस-बारह क्षणोंके बाद ही मुझे चार लट्ठधारी व्यक्ति आते हुए दिखायी दिये। उनको देखकर मैं और घबड़ा गया कि ये लट्ठधर लूटेंगे और मारेंगे भी। जब वे पास आ गये तो उन्होंने मुझसे पूछा— बाबू! आप परेशान-से कैसे खड़े हैं?

जीपकी ओर अँगुली करते हुए परिस्थितिकी विकटता उनको बता दी। उन्होंने कहा— बाबू! घबड़ाइये नहीं। अभी सब ठीक हो जाता है।

मैंने आश्चर्य भरे स्वरमें उनसे कहा— अरे! तुम लोग कैसी बात करते हो? एक तो जीपमें माल भरा हुआ है, दूसरे ढलानपर है और तीसरे गड्ढेमें लटकी हुई है।

उन्होंने कहा— आप देखते जाइये।

और मैं क्या बताऊँ? मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही। उन चारों व्यक्तियोंने मालसे भरी जीपको ढकेल करके रास्तेपर ऐसे ही पहुँचा दिया, जैसे कोई बच्चा अपने खिलौनेको यहाँसे वहाँ कर देता है। बाँधकी ढालपर जो सड़क थी, उस पर जीप अब सुरक्षित खड़ी थी।

हमने उनके प्रति बड़ी कृतज्ञता व्यक्त की। उनके सहयोगसे इस भीषण संकटसे हम लोगोंको मुक्ति मिल गयी। एक-दो ऐसे ही भीषण संकट और भी आये थे। उनका स्वरूप दूसरा था, परंतु स्थितिकी गम्भीरता और भयंकरता इसी प्रकारकी थी। जब-जब परिस्थितिकी भीषणता आयी, हमने श्रीभाईजीको और भगवानको याद किया। जब-जब श्रीभाईजीको और भगवानको याद किया, वे सारे संकट दूर होते गये।

बाढ़के कम होनेपर सहायता-कार्य भी बन्द कर दिया गया। मैं खगड़ियासे गोरखपुर आया। मेरे मनमें बड़ा चाव था कि पूज्य श्रीभाईजीको बताऊँगा कि कैसे सहायता-कार्य किया गया और भीषण संकटोंसे हमें कैसे त्राण मिला। मैंने गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके पास बैठकर पहले तो सेवाकार्यका संक्षिप्त विवरण सुनाया और फिर उन संकटोंका वर्णन करने लग गया। वर्णन थोड़ा-सा ही कर पाया था कि श्रीभाईजीने मुझसे कहा— भइया! सब मेरे निगहमें है।

श्रीभाईजीके इतना कहते ही मैंने सुनाना बंद कर दिया, पर साथ ही मैं बड़ा विस्मित भी हो रहा था कि गोरखपुर मैं बैठे हुए ही श्रीभाईजीके द्वारा उन सारी परिस्थितियोंका नियंत्रण हो रहा था, जिसके फलस्वरूप हमलोगोंपर आये हुए सम्पूर्ण संकटोंका निवारण हो गया। एक बात और मेरे सामने आयी। मैं ऐसा सुना करता था कि यदि श्रीभाईजी किसीको कोई कार्य सौंपते थे तो उसे कार्य करनेकी शक्ति देते थे तथा उसकी सँभाल भी करते थे। इस प्रसंगसे मेरी यह धारणा और भी सुपुष्ट हो गयी। मैं स्वभावसे थोड़ा आलसी हूँ और मुझ जैसा आलसी व्यक्ति प्रतिदिन सुबहसे शामतक लगभग दो मास निरन्तर कार्य कर सके, यह सम्भव ही नहीं। इसके अतिरिक्त अपने धन्धेमें लगे हुए व्यापारिक वर्गको कहाँ फुरसत रहती है, पर आश्चर्य यह है कि अति व्यस्त व्यापारिक बन्धुओंने ही समय निकालकर सेवा-कार्यमें उत्साह पूर्वक सहयोग दिया। सेवा-कार्यको करनेके लिये व्यक्ति आगे-से-आगे मिलते गये। मैं तो यही मानता हूँ कि यह सारा

सम्भव हो सका इसीलिये कि श्रीभाईजीके द्वारा शक्तिका दान और पद-पदपर सँभाल हो रही थी। ■

श्रीभीमसेनजी चोपड़ा

[१] कार्यकर्ताके प्रति आदर

मध्यप्रदेशके वनवासी क्षेत्रोंमें ईसाई मिशनरियोंने विद्यालयों, अस्पतालों, गिरिजाघरोंके रूप में अपना एक जाल-सा फैला रखा है और अबोध हिन्दुओंकी सरलता और विवशताका लाभ उठाकर एक बहुत बड़ी हिन्दू जनसंख्याका धर्मपरिवर्तन करा लेनेमें उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली है। इस अनुचित लाभ उठा लिये जानेकी प्रक्रियाकी रोक-थामके लिये, अपितु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह कि अपने सरल वनवासी हिन्दुओंके हृदयोंमें धर्म-भावको जगानेके लिये तथा निज-धर्म-निष्ठ बनानेके लिये जशपुरनगरमें 'कल्याण आश्रम'की स्थापना हुई और तब मैं उस नव-गठित संस्थाके मन्त्रीके रूपमें कार्य करता था। कल्याण आश्रमको जशपुरके राजासाहबने अपना पुराना महल दे दिया और उस महलमें कल्याण आश्रम अपना विद्यालय चलाता था। सन् १९६० के आस-पास महलकी छत ढह पड़ी। अब विद्यालयके लिये नवीन भवनका निर्माण अनिवार्य हो गया। भवन-निर्माणके लिये धनकी आवश्यकता थी, अतः धन-संग्रहके लिये मैं कलकत्ता चला गया।

मुझे मेरे प्रयासमें सफलता नहीं मिल पा रही थी। उचित परिचयके अभावमें मैं पद-पदपर कठिनाईका अनुभव कर रहा था। मेरे सुननेमें आया कि श्रीभाईजी गोरखपुरसे कलकत्ता आये हुए हैं, पर समस्या यह थी कि मुझ नवीन व्यक्तिकी बातको क्या वे सुनेंगे? श्रीओंकारमलजी सर्राफ श्रीभाईजीके घनिष्ठ मित्र हैं और उनके माध्यमसे मैं श्रीभाईजीतक पहुँच सका। मैंने श्रीभाईजीको मध्यप्रदेशके वनवासी हिन्दुओंकी पूरी परिस्थितियोंसे तथा कल्याण आश्रमके कार्यसे अवगत कराया। जितने धैर्यसे उन्होंने सारी बातें सुनी, उससे मेरा साहस बढ़ा। मैंने अनुरोध किया– यदि आप कलकत्तेके कुछ धनपतियोंके नाम पत्र लिखकर दे सकें तो भवन-निर्माणका कार्य पूरा हो सकेगा।

किसीको भी आर्थिक सहयोगके लिये पत्र लिखनेमें श्रीभाईजीको सदैव झिझक होती रही है, पर मेरे कार्यकी गरिमा और आवश्यकताको समझकर उन्होंने मुझको चार बहुत बड़े-बड़े धनपतियोंके नाम बतलाये और फिर मुझसे कहा– इस-इस भावके पत्र उनके नाम लिखकर तथा टाइप कराकर ले आइये, मैं हस्ताक्षर कर दूँगा।

चारों पत्रोंको तैयार करके मैं श्रीभाईजीके पास ले गया। उन्हें देखकर, वे चारों पत्र श्रीभाईजीने अपने पास रख लिये और मुझसे कहा– पत्रोंको रहने दें। आप मेरे नामको लेकर ही उन लोगोंसे बात कर लीजियेगा।

मैं समझ नहीं पा रहा था कि पत्रमें कहाँ क्या गलती हो गयी, जिससे उन्होंने पत्र अपने पास

रख लिये। इतना अनुमान तो मुझे हो गया कि पत्रोंमें कोई ऐसी चूक अवश्य हुई है, जिसे श्रीभाईजी संकोचके कारण बता नहीं पा रहे हैं और उनके पास इतना समय भी नहीं है कि पत्र स्वयं तैयार करके दे दें, तभी तो उन्होंने नाम लेकर बात करनेके लिये कह दिया। यह बिगड़ी बात अब कैसे बने ? मैं मन-ही-मन भगवानसे प्रार्थना करने लगा।

श्रीरामनिवासजी ढंढारियाका श्रीभाईजीसे संकोच खुला हुआ है। उन्होंने कौतूहलवशात् पूछ लिया— क्या बात हो गयी ? आपने पत्र देनेको कहा था, फिर अब उनको परिचय-पत्र क्यों नहीं दे रहे हैं ?

श्रीभाईजीने कहा— अरे भइया ! सारा पत्र तो ठीक ही लिखा गया है, पर पत्रके आरम्भमें उनके नामके पहले 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग किया गया है। लिखा जाना चाहिये था 'प्रिय श्री'। वे लोग आयुमें मुझसे छोटे हैं, इसके अलावा उनके साथ सम्बन्ध भी ऐसा मधुर है कि परमादरणीय शब्दको पढ़ते ही उनके मनको कष्ट होगा। इसी कारण मैंने पत्र नहीं दिया। नये सिरेसे पत्र लिखनेके लिये मेरे पास समय नहीं, इसीलिये नाम लेकर बात करनेके लिये कह दिया।

भगवत्प्रेरणासे श्रीढंढारियाजीने मेरी तरफदारी की और कहा— यदि आपके दो लाइन लिख देनेसे उनका काम बनता हो तो आप क्यों नहीं लिख देते ?

श्रीभाईजीने कहा— अभी तो बड़ा व्यस्त हूँ। तनिक भी फुरसत नहीं।

कुछ रुककर श्रीभाईजीने उसी समय मुझसे कहा— अच्छा, आप कल सबेरे आठ बजे आकर चारों पत्र ले जाइयेगा।

इतना सुनकर मेरी भावनाओंको बड़ा सहारा मिला। श्रीभाईजी पानीहाटीमें ठहरे थे और मैं बहुत सबेरे पानीहाटीके लिये चल दिया, जिससे समयसे पहले पहुँच जाऊँ। जल्दी चल देनेके बाद भी ट्राम-बसकी कठिनाईके कारण मैं समयपर नहीं पहुँच पाया। श्रीभाईजीको लोहाघाटपर निर्मित संकीर्तन भवनके उद्घाटनके लिये जाना था और वे जा चुके थे। वहाँ पहुँचकर आवासकी एक बहिनसे मैंने पूछा— क्या श्रीभाईजी मुझको देनेके लिये कोई पत्र बतला गये हैं ?

नकारात्मक उत्तर मिलनेपर मैं निराश होकर लौटने वाला ही था, तभी आवासकी छतपरसे एक बहिन तीव्र गतिसे उतरती हुई नीचे आयी और उसने मुझे रुकनेके लिये संकेत किया। उसने पास आकर बतलाया— अभी-अभी लोहाघाटसे श्रीभाईजीका टेलीफोन आया है और कहा कि यदि श्रीचोपड़ाजी वहाँ आवें तो मेरी डेस्कमें रखे हुए अमुक-अमुक नामके चारों पत्र उनको दे देना, जिससे उनको दुबारा न आना पड़े और उनका समय नष्ट न हो।

बहिनके मुखसे श्रीभाईजीके संदेशको सुनकर मैं सिहर उठा और मन-ही-मन सोचने लगा कि एक अत्यन्त साधारण सामाजिक कार्यकर्ताके कार्यके लिये और उसके समयके लिये उनके मनमें कितना अधिक आदर और महत्त्व है और उसकी परेशानीके प्रति वे कितने अधिक संवेदनशील हैं। मेरी इन भावनाओंके आवर्त उस समय और अधिक गहरे हो उठे, जब यह मालूम हुआ कि इस संदेशको देनेके लिये वे जब मंचपरसे उठकर फोनपर आये थे, तब वे कलकत्तेके अत्यन्त गणमान्य करोड़पतियोंसे घिरे हुए थे।

[२] सामाजिक कार्यको सम्मान

श्रीभाईजीने कलकत्तेके चार बड़े-बड़े धनपतियोंके नाम पत्र लिखकर दिये, इससे मुझे अपने प्रयासमें पर्याप्त सफलता मिली। इन पत्रोंसे कार्यकी सिद्धि केवल इसी समय एक बार नहीं हुई, अपितु भविष्यमें भी समय-समयपर आर्थिक सहयोग मिल सके, इसका पथ प्रशस्त हो गया।

पहले मैंने जो चारों पत्र लिखे थे, उनमें मैंने इन बड़े-बड़े धनपतियोंके नामके पहले 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग किया था और ऐसा किया था यही सोचकर कि ये लोग कलकत्तेके महान विख्यात व्यक्ति हैं। इसी 'परमादरणीय' शब्दको देखकर श्रीभाईजीके मनमें उन चारों पत्रोंपर हस्ताक्षर करनेकी अनिच्छा हो उठी थी। अब यह बात दूसरी है कि भगवत्कृपासे वह बिगड़ी बात बन गयी और श्रीभाईजीने नये सिरेसे चारों पत्र लिखकर तथा टाइप कराकर मुझे दिये। श्रीभाईजीने उन पत्रोंमें धनपतियोंके नामके पूर्व 'प्रिय श्री' लिखा था।

इसके तीन-चार दिन बादकी बात है। श्रीभाईजीने चलती ट्रेनमेंसे मेरे लिये एक पत्र लिखा। उस पत्रमें उन्होंने मेरे नामके पहले 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग किया था। इसे पढ़ते ही मेरी आँखें भर आयीं। वे भरी आँखें छलक पड़ी और अश्रुबिन्दु ढुलकने लगे। श्रीभाईजीने उन धनपतियोंके लिये परमादरणीय शब्दका प्रयोग तो किया नहीं, पर मेरे लिये किया और 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग करके उन्होंने मेरा नहीं, मेरे द्वारा हो रहे कार्यका सम्मान किया। श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी इस महानताके प्रति मैं नत-मस्तक था। उनके व्यक्तित्वकी यह भाव-गरिमा सदैव वन्दनीय रही है और सदैव वन्दनीय रहेगी। एक बात और, उन्होंने अपनी ओरसे ११०० रुपयोंका सहयोग देनेके लिये कहा था और उन्होंने भेजा २१०० रुपया। वस्तुतः वे अनोखी भाव-गरिमा और उदारताके महान पुञ्ज थे। ■

डा. श्रीमहेन्द्रनारायणजी शर्मा

आचार निष्ठा

श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) २२ मार्चके प्रातःकाल अपना पार्थिव कलेवर त्यागकर भगवानकी नित्यलीलामें लीन हो गये। वे भगवानमें ही जीये, भगवानमें ही रहे और अन्तमें भगवानमें ही लीन हो गये। उन्होंने अपने जीवन, व्यवहार, कार्य, वाणी, लेखन, इतना ही नहीं, अपने श्वास-श्वाससे भगवद्भावका प्रचार-प्रसार किया। उनका जीवन आस्तिकताकी साकार प्रतिमा था।

भक्त अखिल विश्व-ब्रह्माण्डके रूपमें अपने प्रभुको ही अभिव्यक्त हुआ अनुभव करता है, अतः सभी भूत-प्राणियोंके प्रति उसका आत्मभाव रहता है और इससे उसमें अहिंसाकी नित्य प्रतिष्ठा रहती है। श्रीभाईजीके जीवनमें भी हम इसका आदर्श रूप प्राप्त करते हैं। उन्होंने जीवनभर अपने कण-कणसे अहिंसा, प्रेम एवं पवित्रताका दान किया है। वे आदर्श गृहस्थ-संत थे, अतएव शरीरकी अस्वस्थतामें वे उपचार करवाते थे, पर इस बातका वे बराबर ध्यान रखते थे कि जो औषधि वे ले रहे हैं, उसमें किसी भी रूपमें कोई जान्तव पदार्थ अथवा अन्य कोई अशुद्ध वस्तु न हो। आजकल पशु-पक्षियोंकी हत्याकर अथवा बिना हत्या किये उसके रक्त, मांस एवं

विभिन्न अंगोंके रसोंसे अनेक प्रकारकी औषधियोंका निर्माण होता है, जो किसी-किसी भीषण रोगोंमें लाभप्रद सिद्ध हुई है, परंतु श्रीभाईजी इस प्रकारकी औषधियोंसे सदा सावधान रहे। वे औषधिमें सम्मिलित किये गये पदार्थोंके विषयमें पूरी जानकारी करनेके पश्चात् ही उसका सेवन करते थे। किसी औषधिमें यदि तनिक भी कोई जान्तव पदार्थ सम्मिलित पाया जाता था तो वे उसे नहीं लेते थे, फिर चाहे वह कितनी ही लाभप्रद क्यों न हो।

उन्हें मधुमेह (डायबिटीज) की बीमारी थी। इसके लिये वे अपने भोजनपर बराबर नियन्त्रण रखते थे तथा आवश्यक होनेपर कुछ दवा भी ले लिया करते थे। मित्रोंने तथा डाक्टरोंने 'इन्सुलिन' का इन्जेक्सन लेनेके लिये अनेक बार कहा, पर वे जानते थे कि 'इन्सुलिन' पशुओंके किसी अंग विशेषके रससे बनता है, अतएव उन्होंने इसका सेवन कभी नहीं किया।

अहिंसाका उपदेश तो सभी करते हैं, पर समयपर उसका पालन विरला ही कर पाता है। परम श्रद्धेय श्रीभाईजीकी यह आचार-निष्ठा जगत्‌को सदा पवित्र करती रहेगी। ■

डा. श्रीलालदेवजी सिंह

चरण-वन्दन

गुरुजनोंके चरण-वन्दनका श्रीभाईजीके जीवनमें बहुत ऊँचा स्थान था। वे अपनेसे बड़ोंको पैर छूकर प्रणाम किया करते थे, साधु-संतों एवं पण्डितोंको भी वे चरण-स्पर्श करके प्रणाम करते थे। अपने घरमें रसोई बनाने वाले ब्राह्मणोंको भी पैर छूकर प्रणाम करते हुए उन्हें देखा गया है। पिता-पितामहके श्राद्धमें ब्राह्मण-भोजन हो जानेपर वे दक्षिणा देते समय पण्डितोंको चरण छूकर प्रणाम करते थे। अपने साथ कार्य करने वाले तथा अपनेसे बहुत छोटी आयु वाले पण्डितोंको जब श्रीभाईजी प्रणाम करते थे, तब युवा पण्डित संकोचके मारे गड़ जाते थे, पर श्रीभाईजी अपने आदर्शका निर्वाह अवश्य करते थे। प्रायः अपना प्रवचन आरम्भ करनेके पूर्व उपस्थित श्रोताओंको प्रणाम करते हुए वे कहा करते थे— *विश्व ब्रह्माण्डके रूपमें अभिव्यक्त भगवानके नाते आप सबके श्रीचरणोंमें सभक्ति नमस्कार।*

श्रीभाईजी अपनी लाचारीकी अवस्थामें भी यथासम्भव अपने इस स्वभावका निर्वाह करते रहे। अन्तिम बीमारीके दिनोंमें गोरखपुर स्थित पूर्वोत्तर रेलवेके केन्द्रीय अस्पतालके सर्जरी विभागके डी. एम. ओ. श्रीशर्माजी विशुद्ध प्यारके नाते श्रीभाईजीको देखने आये थे। एक दिन श्रीभाईजीका दर्शन करने और उन्हें प्रणाम करनेके लिये उनकी वयोवृद्ध माताजी उनके साथ आयीं। डाक्टर साहबने कमरेमें प्रवेश करते ही हाथ जोड़कर श्रीभाईजीको प्रणाम किया। श्रीभाईजीने उनके प्रणामका उत्तर प्रणाम कह कर दिया। जब डाक्टर साहबकी वृद्धा माताजी श्रीभाईजीको प्रणाम करने लगी, तब श्रीभाईजी बड़ी ही विनम्रतासे बोले— माताजी ! आप तो मेरी माँ हैं। मैं आपको प्रणाम करूँगा और आपका आशीर्वाद लूँगा।

माताजी श्रीभाईजीकी इस विनय भरी भावनासे मुग्ध हो गयीं और वे प्रणाम न करके आगे बढ़ गयीं श्रीभाईजीको आशीर्वाद देनेके लिये। श्रीभाईजीने चारपाईसे झुककर माताजीका चरण-स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया। माताजी वृद्ध हैं, पर वे आयुमें श्रीभाईजीसे छोटी हैं तथा वे

श्रीभाईजीके प्रति श्रद्धा रखती हैं और उसी भावसे वे श्रीभाईजीको प्रणाम करने पधारी थीं, पर स्वजनकी माँ अपनी माँ है और माँ सदा प्रणम्य है, इस आदर्शका निर्वाह श्रीभाईजी कैसे न करते ! डाक्टर साहब तथा उपस्थित सभी व्यक्ति श्रीभाईजीके इस व्यवहारसे मुग्ध हो गये कि इतने बड़े होकर भी ये माताजीका चरणस्पर्श कर उन्हें प्रणाम करते हैं और वह भी अपनी लाचारीकी अवस्थामें। लेटे-लेटे हाथ जोड़कर प्रणाम कर लेना ही पर्याप्त था, पर श्रीभाईजीने चारपाईसे झुककर प्रणाम करनेमें ही संतोषका अनुभव किया। उनके इस प्रकार विवशताकी स्थितिमें चारपाईसे झुककर प्रणाम करनेसे डाक्टर साहबका तथा अन्य व्यक्तियोंका हृदय भर आया। ■

श्रीरघुवरदयालजी गर्ग

होलीपर नगर-कीर्तन

गोरखपुरमें होलिका-दहनके अगले दिन नगर कीर्तनका आयोजन और प्रचलन श्रीभाईजीके सुधारवादी एवं समन्वयवादी दृष्टिकोणका एक बेजोड़ उदाहरण है। इसमें कोई संदेह नहीं कि होली हिन्दुओंका बहुत पुराना और बड़ा पवित्र त्योहार है। ऐसा कहा जाता है कि इसी दिन भक्तराज प्रह्लादकी अग्नि परीक्षा हुई थी। दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी बहिन होलिकाको अग्निमें न जलनेका वरदान मिला हुआ था। भाईके आदेशपर भतीजेको जला देनेके लिये वह होलिका अपनी गोदमें प्रह्लादको लेकर बैठ गयी। चारों ओरसे आग लगा दिये जानेपर दैत्यराजकी बहिन होलिका तो जल गयी और भक्तराज प्रह्लाद बच गये। यह आसुरी शक्तिपर प्रभु-भक्तिकी विजयका परिचायक है। उसीकी यादमें प्रतिवर्ष फाल्गुनी पूर्णिमाको होली जलायी जाती है और अगले दिन हर्षोल्लास मनाया जाता है, पर आज इस हर्षोल्लासने बड़ा विकृत रूप धारण कर लिया है।

गन्दे गीत गाये जाते हैं। लाज-शरम एक किनारे रख दी जाती है। निर्लज्जताका राज्य हो जाता है। अश्लीलता निरंकुश हो उठती है। शराब-भाँगका खुला प्रयोग होता है। भाभी-साली आदिसे अमर्यादित फाग खेला जाता है। कपड़ों-दीवारोंपर अभद्र शब्द लिखे जाते हैं। ऐसी बहुत-सी बातें होती हैं, जिसकी ओर संकेत करनेमें भी संकोच हो रहा है।

होली जैसे परम पवित्र त्योहारका ऐसा विकृत रूप कैसे हो गया, इसे बता सकना बड़ा कठिन है। कारण जो भी हो, इस विकृत रूपको देखकर श्रीभाईजीका हृदय बड़ा व्यथित हुआ। वे होलीका त्योहार मनानेकी पद्धतिमें परिष्कार और सुधार चाहते थे। सुधारके लिये श्रीभाईजीने होलिका-दहनके अगले दिन नगर-कीर्तन निकालनेका निश्चय किया। इसी दिन तो अभद्रताका नग्न नृत्य विशेष रूपसे समाजमें दिखलायी देता है और उसीको भद्र-स्वरूप प्रदान करना था।

व्रजके परमाराध्य श्रीराधाकृष्णके लीलाराज्यमें होलीके फाल्गुनी रंगोल्लासका विशेष महत्त्व है। श्रीभाईजीके आराध्य भी भगवान श्रीराधाकृष्ण हैं, अतः नगर-कीर्तनमें गुलालका खुलकर प्रयोग करनेकी छूट रहती है। कीचड़-मिट्टी-अलकतराके प्रयोगकी कल्पना ही नहीं। गुलाल

लगाने-लगवानेके माध्यमसे अपने रंगोल्लास और प्रीतिकी अभिव्यक्ति होनी ही चाहिये और होती है।

इस नगर कीर्तनमें साथ-साथ चलने वाले यात्रा-विमानके सिंहासनपर श्रीनृसिंह भगवानका चित्रात्मक श्रीविग्रह विराजित रहता है। यह भक्त-हृदय प्रह्लादकी भक्ति-भावनाकी स्मृति दिलाता है। होलिका-दहनके अगले दिन नगर-कीर्तनमें भगवान श्रीनृसिंहका विग्रह विराजित करना श्रीभाईजीके दूरगामी सूझका परिचायक है।

फाल्गुनी पूर्णिमाको ही प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ था। श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनमें भगवन्नामका सर्वाधिक महत्त्व है। नगर-कीर्तनमें तुमुलस्वरसे श्रीभगवन्नामका संकीर्तन होता है। सभी उच्च स्वरसे हरिनामका गायन करते हैं। यह श्रीचैतन्य महाप्रभुके जन्मोत्सवका रसोल्लास ही है।

होलिका-दहनके अगले दिन नगर-कीर्तन निकालकर, जहाँ एक ओर समाजके अवाञ्छनीय रूपको सँवारने-सुधारनेका प्रयत्न किया गया, वहीं दूसरी ओर तीन भव्य भावधाराओंके समन्वयका भी सफल प्रयास रहा। ये तीन धाराएँ हैं भक्तराज प्रह्लादकी निमर्लोत्तम भक्ति-भावना, व्रजभूमिका फाल्गुनी गुलाली रंगोल्लास और प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुका पावन हरिनाम संकीर्तन।

श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने इस सारे समायोजनका नेतृत्व अन्योंको दे दिया। श्रीभाईजीको नामसे नहीं, कामसे मतलब था। नवायोजित कार्यक्रमको मूर्तरूप देनेके लिये अपनी ओरसे पूर्ण सहयोग दिया और नगर-कीर्तनके उस नव-प्रचलित कार्यक्रमको सफल बनाया, पर श्रेय और नेतृत्व दिया गोरखनाथपीठके महन्त पूज्य श्रीदिग्विजयनाथजी महाराजको। इसके साथ-साथ सहयोग ले लिया राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके कार्यकर्ताओंका। यह नगर-कीर्तन अब भी निकलता है। यद्यपि आजकल वैसा भव्य रूप नहीं रहा, पर यह नगर-कीर्तन याद दिला देता है श्रीभाईजीके सुधारवादी और समन्वयवादी दृष्टिकोणकी।

केवल गोरखपुरमें ही क्यों, ऐसा सर्वत्र होना चाहिये। अतः श्रीभाईजीने होलिकोत्सवपर एक विशेष लेख लिखा, जो कल्याणमें प्रकाशित हुआ। उस लेखके अंतमें श्रीभाईजीने सभीसे अष्ट बातोंके लिये अनुरोध किया। वे आठों बातें इस प्रकार हैं—

१- *फागुन सुदी ११ को या और किसी दिन भगवानकी सवारी निकालनी चाहिये, जिनमें सुन्दर-सुन्दर भजन और नाम-कीर्तन हो।*

२- *सत्संगका खूब प्रचार किया जाय। स्थान-स्थानमें इसका आयोजन हो। सत्संगमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, क्षमा, प्रमादके त्याग, नाम-माहात्म्य और भक्तिकी विशेष चर्चा हो।*

३- *भक्ति और भक्तिकी महिमाके तथा सदाचारके गीत गायें जायँ।*

४- *फागुन सुदी १५ को हवन किया जाय।*

५- *श्रीमद्भागवत और श्रीविष्णुपुराण आदिसे प्रह्लादकी कथा सुनी और सुनायी जाय।*

६- *साधक एकान्तमें भजन-ध्यान करें।*

७- *श्रीश्रीचैतन्यदेवकी जन्मतिथिका उत्सव मनाया जाय। महाप्रभुका जन्म होलीके दिन*

ही हुआ था। इसी उपलक्ष्यमें मुहल्ले-मुहल्लेमें घूमकर नामकीर्तन किया जाय। घर-घरमें हरिनाम सुनाया जाय।

८- *धुरेण्डीके दिन ताल, मृदंग और झाँझ आदिके साथ बड़े जोरसे नगर-कीर्तन निकाला जाय, जिसमें सब जाति और सभी वर्णोंके लोग बड़े प्रेमसे शामिल हों।* ■

श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी

[१] मेरी क्षुद्रता और उनका प्यार

श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की अति विस्तृत और विशाल छत्र-छायाके नीचे असंख्य परिवारोंका 'भरण-पोषण' होता रहा है और ऐसे परिवारोंमें एक परिवार हमारा भी था। हमारे परिवारके संरक्षक-अभिभावक श्रीभाईजी ही थे। हमलोगोंका जीवन उन्हींके आश्रयमें पल रहा था, फल रहा था। हमलोगोंकी आस्था तो ऐसी है कि नित्यलीलामें लीन हो जानेके बाद भी वे हमारे योग-क्षेमका वहन आज भी कर रहे हैं। वे हमारे मध्य बड़े थे, अतः हमलोग घरके छोटे-बड़े विवादोंको लेकर उनके सामने चले जाया करते थे। एक बारकी बात है। मैं उनके पास गया और अपने परिवारके एक बड़े व्यक्तिकी शिकायत करते हुए उनसे कहने लगा— ये अपने दायित्वको पूरी तरह नहीं निभा रहे हैं।

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजी गम्भीर हो गये और प्यार पूर्वक मुझसे कहने लगे— *तुम तो अपना दायित्व पूरी तरह निभा रहे हो न ? ऐसी स्थितिमें अब तुम्हें अन्य व्यक्तिकी स्मृति और चिन्ता ही क्यों कर हो ? यदि चिन्ता होती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम अपना दायित्व पूरा-पूरा नहीं निभा रहे हो। तभी तो अपनेसे बड़ोंकी कमीकी ओर तुम्हारा ध्यान गया। यदि सच्चाईके साथ तुम अपने कर्तव्य-पालनमें लगे रहोगे तो तुम्हारा प्रभाव अन्य छोटे-बड़े सभीपर पड़ेगा। यदि तुम इन छोटी-छोटी बातोंको लेकर उलझते रहोगे तो तुम उन लोगोंके मार्गमें भी बाधा उपस्थित करोगे जो अपना दायित्व सच्चाईसे निभा रहे हैं।*

श्रीभाईजीने इतने प्यार पूर्वक समझाया कि मनका सारा क्षोभ तत्काल दूर हो गया और मुझे अपनी क्षुद्रता दिखलायी देने लग गयी। मेरी आँखोंमें सलज्जताके भाव तैरने लगे। मैं प्रणाम करके श्रीभाईजीके पाससे चला आया।

यह सच ही कहा गया है कि आदमीका स्वभाव जल्दी नहीं बदलता। अपने स्वभावसे लाचार होकर एक बार फिर मैं शिकायत करने पहुँच गया। इस बार शिकायत अपने परिवारके व्यक्तिकी नहीं, अपितु 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागके एक सम्माननीय सदस्यकी। मैं उनकी शिकायत श्रीभाईजीके सामने करने लगा। जब मैं उनके कार्योंपर टिप्पणी करने लगा तो श्रीभाईजीने फिर उसी प्यारसे और फिर उसी रीतिसे मुझे समझाने लगे— मदन, *तुमको अपना ध्यान अपने कामपर रखना चाहिये। तुम्हारे जिम्मे जो काम है, उसको पूरा करो। वह व्यक्ति जो काम करता है, वह मेरा काम है, यहाँ तक कि उसका वह निजी काम भी मेरा ही काम है। तुम्हारा सच्चा हित इसीमें है कि तुम अपनी दृष्टिको निर्दोष बनावो। दृष्टिकी क्षुद्रताको दूर करो। किसी अन्यपर दोष-दृष्टि रखो ही क्यों ? दृष्टिकी निर्मलता जीवनको कितना अधिक*

सुखमय बना देती है, इसका अनुभव करके देख लो।

अब तो मैं बहुत ही लज्जित हुआ। मुझे अपनी क्षुद्रता दिखलायी देने लग गयी। मैं प्रणाम करके चुपचाप चला आया। उन्होंने न तो मुझ निन्दककी उपेक्षा की, न मुझे फटकार सुनायी और न मेरी क्षुद्रताके कारण अनादर किया, अपितु सदा ही प्यारकी वर्षा करते हुए मुझे समझानेका प्रयास किया। उनकी सिखावन रह-रह करके याद आती है।

[२] वह महान संतत्व

मैंने शार्ट-हैंन्ड और टाइपका थोड़ा-थोड़ा अभ्यास कर लिया था। मैं 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें तो कार्य करता ही था, पर मेरी यह भी बड़ी चाह थी कि श्रीभाईजी मुझसे भी पत्र लिखवाया करें। मेरा उत्साह देखकर श्रीभाईजीने मुझको अवसर दिया और पत्रका डिक्टेशन देनेके लिये बुला लिया।

श्रीभाईजी धीरे-धीरे बोल रहे थे और मैं शार्ट-हैंडमें पत्र लिख रहा था। उन्होंने एक-दो ही पत्र लिखवाये थे कि उनके सामने कोई अन्य काम आ गया और मुझको टाइप करके ले आनेके लिये कह दिया। मैं उनके पाससे चला आया और कुछ देर बाद पत्र टाइप करनेके लिये बैठा तो मैं अपना लिखा हुआ ही नहीं पढ़ पा रहा था। श्रीभाईजी इतना धीरे-धीरे बोलकर डिक्टेशन दे रहे थे कि कोई शीघ्र लिखनेवाला उसे हिन्दी भाषामें लिख ले सकता था, पर मैंने तो शार्ट-हैंडमें लिखा था और मेरी लिखावटके कई अंश मेरे लिये ही अपठनीय बन रहे थे। लिखावटको जितना पढ़ सका, उतने बोधपूर्ण अंशके आधारपर और कुछ स्मृतिके सहारे पत्रको टाइप करके मैं श्रीभाईजीके पास ले गया। मैं पत्र ले जा रहा था, पर मैं मन-ही-मन यह अच्छी तरह समझ रहा था कि मेरी अयोग्यताके कारण पत्र सही रूपमें नहीं तैयार किया गया है।

मैंने पत्र श्रीभाईजीके सामने रख दिया और श्रीभाईजीने उन पत्रोंको अपने हाथमें ले लिया। श्रीभाईजी पढ़ रहे थे उन पत्रोंको और मैं पढ़ रहा था श्रीभाईजीके मुखकी रेखाओंको। पत्रोंमें तथ्योंका प्रस्तुतीकरण ठीक से हुआ ही नहीं था, इसे जानकर भी उनके श्रीमुखपर असन्तोषकी एक भी रेखा नहीं थी, झुँझलाहटकी हलकी छाया भी नहीं थी। पत्र पढ़कर प्यार भरे स्वरमें उन्होंने मुझसे कहा— मुझे एक कामकी जल्दी थी और ऐसा लगता है कि उस जल्दीके कारण मैं तुमको डिक्टेशन जल्दी-जल्दी दे गया। इसी कारण तुम सही नहीं लिख पाये। मैं तुमको फिर बुलाऊँगा और तब धीरे-धीरे डिक्टेशन दूँगा।

यह सुनते ही मैं तो अवाक् रह गया। आदिसे अन्ततक मेरी गलती और उस सारी गलतीको श्रीभाईजीने अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने मेरी तनिक भी आलोचना नहीं की। मेरी अयोग्यतापर टीका-टिप्पणी करनेके स्थानपर स्वयंको ही दोषी ठहरा दिया। वस्तुतः मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही और मेरी भावनाएँ बार-बार कहने लगीं— ऐसा महान संतत्व! ■

वैद्य श्रीजानकीलालजी त्रिपाठी

पुष्पमालाका अर्पण

उदयपुरमें श्रीवसन्तीलालजी महात्मासे मेरा घनिष्ट परिचय था। वे अच्छे योगी थे। उनके पास मेरा उठना-बैठना हुआ करता था। सन् १९५६ की बात है। गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा ट्रेन उदयपुर आयी थी। मैं उनके पास गया तो उन्होंने बड़े उल्लास पूर्वक कहा– *रातसे ही उदयपुर और आसपासका सम्पूर्ण वायुमण्डल सतोगुणसे परिपूर्ण हो गया है। यह निश्चय ही श्रीभाईजीके असाधारण आध्यात्मिक प्रभावका सूचक है। गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा ट्रेन आयी है। उसमें श्रीभाईजी आये हैं। उनकी उपस्थितिसे वायुमण्डलमें परिव्याप्त सतोगुणके परमाणुओंका संस्पर्श मुझे प्राप्त हो रहा है।*

वे सम्माननीय योगी थे, अतः मुझे उनके उद्‌गारोंको सुनकर बड़ी प्रसन्नता इसलिये भी हुई थी कि श्रीभाईजीके पावन दर्शनकी चिर अभिलाषाकी पूर्तिका क्षण अब निकट था। श्रीभाईजीकी बड़ी प्रशंसा मैंने अपने पूज्य गुरुदेव श्रीदुर्गाशंकरजी नागरसे सुन रखी थी, जो उज्जैनके एक महान संत थे।

बहुत सबेरे मैं पुष्पमाला लेकर श्रीभाईजीके दर्शनार्थ उदयपुर स्टेशन गया। वहाँ मैंने खद्दरकी धोती पहने हुए एक व्यक्तिसे पूछा– श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार कहाँ बैठे हैं ?

जिनसे मैंने पूछा था, वे ही श्रीभाईजी थे, पर न मैं उनको पहचानता था और न उन्होंने यह कहा ही कि मैं ही हूँ। स्वयंको बतलानेके स्थानपर वे चुपचाप मुझे अपने साथ भगवा वस्त्र पहने हुए एक संन्यासीके पास ले गये और उनको माला पहना देनेका संकेत किया। मैं सरल स्वभावका ब्राह्मण बिना तर्क-वितर्क किये उन संन्यासीको माला पहनाकर घर चला आया। जब मुझे ज्ञात हुआ कि चुपचाप साथ ले जानेवाले ही श्रीभाईजी थे तो मुझे उनके 'आपु अमानी' भावपर बड़ा विस्मय हुआ। मैं तो श्रीभाईजीके इस दैन्य भावपर बलिहार था। अब तो यह भी जानकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि परिचयके अभावमें जिन संन्यासीको मैंने माला पहनायी, वे ही पूज्य श्रीराधा बाबा थे, जिनके चरणाश्रयमें मैं जीवनके शेष दिन व्यतीत कर रहा हूँ। इस घटनासे एक अर्थ यह भी तो ध्वनित हो रहा है कि भविष्यमें जिनका चरणाश्रय मिलना था, उनके प्रति पुष्पार्पणके माध्यमसे समर्पणका शुभारम्भ श्रीभाईजीने पहले ही करवा दिया था, भले ही सारा अनजानेमें हुआ था। यह अनजानापन हमारे-आपके लिये है, श्रीभाईजीके लिये नहीं। ■

श्रीजगदीशप्रसादजी शर्मा

उनका अन्तिम प्रवचन

श्रीभाईजीने आजीवन श्रीहरिभक्तिका प्रचार और श्रीहरिनामका वितरण किया और भगवानकी भक्ति-भावनाके प्रचार-प्रसारमें जो-जो संस्था अथवा व्यक्ति संलग्न थे, उनको समय-समयपर उन्होंने पूर्ण सहयोग दिया। सहयोग दिये जानेके अनेक प्रसंगोंमेंसे एक उत्कृष्ट उदाहरण है 'हरेकृष्ण आन्दोलन' के प्रवर्तक पूज्य स्वामी प्रभुपाद श्री ए. सी. भक्तिवेदान्तजी महाराजका। विगत पच्चीस वर्षोंकी अवधिके भीतर विश्वके अनेक देशोंमें *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'* संकीर्तनकी जो तुमुल ध्वनि सुनायी दे रही है, इसका प्रधान श्रेय है स्वामी श्रीप्रभुपादजीको। इस महान कार्यकी प्रेरणा तो उन्हें अपने श्रीगुरुदेव महाराजसे मिली थी, पर इस महान कार्यमें समकालीन संतोंका समर्थन और सहयोग कम महत्त्वपूर्ण नहीं है और समर्थन एवं सहयोग प्रदान करने वालोंकी शृंखलामें श्रीभाईजीका नाम उल्लेखनीय है।

श्रीभाईजीसे स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी भेंट सर्वप्रथम १९६२ के अगस्त मासमें गोरखपुरमें ही हुई थी। स्वामी श्रीप्रभुपादजी श्रीमद्भागवतकी स्वलिखित टीका छपवाना चाहते थे। इस टीकाके प्रकाशनके सहारे वे विश्वके कोने-कोनेमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भविष्यवाणीके अनुसार श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचारका स्वप्न देख रहे थे। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा था कि पृथ्वीपर जितने नगर-ग्राम हैं, सर्वत्र श्रीकृष्ण-नामका प्रचार होगा। अपनी टीकाके मुद्रणमें श्रीभाईजीसे आर्थिक सहयोग प्राप्त करनेकी भावना लेकर वे गीतावाटिका आये थे। यह सहयोग श्रीभाईजीसे उन्हें मिला। श्रीभाईजीने डालमिया चैरिटेबुल ट्रस्टसे उनको एक बहुत बड़ी धनराशि दिलवायी, जो टीकाके मुद्रण-कार्यमें स्वामी श्रीप्रभुपादजीके लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

इसी प्रथम भेंटमें पारस्परिक बातचीतके मध्य स्वामी श्रीप्रभुपादजीने विश्वमें श्रीकृष्ण-भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करनेकी दृष्टिसे श्रीभाईजीके सामने विदेश-यात्राकी भी अभिलाषा व्यक्त की। श्रीभाईजीने उनके उद्देश्य एवं उत्साहको अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया और समर्थनके साथ-साथ परामर्शके रूपमें कुछ सुझाव भी दिये, जिससे उक्त कार्यमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। श्रीभाईजीने उनके मिशनके प्रति जो सद्भावना व्यक्त की तथा उन्हें जो मंगल प्रोत्साहन दिया, वह उनकी भावी सफलताका एक महत्त्वपूर्ण सोपान था। महान कार्यके लिये सिद्ध संतकी सद्भावना मार्गकी बाधाओंको दूर करके सफलताको समीप ला देती है। मैं तो यही मानता हूँ कि स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी भावी सफलतामें श्रीभाईजीकी सद्भावना भी एक प्रमुख हेतु रही है।

विदेशमें भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति-भावना और नाम-संकीर्तनके प्रसारमें जो सफलता स्वामी श्रीप्रभुपादजीको मिली, उसका विवरण समय-समयपर श्रीभाईजीको देश-विदेशकी पत्र-पत्रिकाओंसे तथा स्वामी श्रीप्रभुपादजीके व्यक्तिगत पत्रोंसे मिलता रहता था। स्वामी

श्रीप्रभुपादजीको अपने मिशनमें भारतसे अधिकाधिक सहयोग मिले, इसके लिये श्रीभाईजीने कल्याण पत्रिकाके सन् १९७० के अप्रैल मासके अंकमें उस सफलताका विवरण चित्र सहित प्रकाशित किया था। 'कल्याण' पत्रिकाकी एक प्रधान नीति है कि जीवित व्यक्तिके वृत्तको नहीं छापा जाय, पर इस नीतिकी उपेक्षा करके श्रीभाईजीने कल्याणमें छः पृष्ठोंका स्थान दिया स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी सफलताको प्रकाशित करनेके लिये। कल्याण पत्रिकाके माध्यमसे स्वामी श्रीप्रभुपादजीके कार्यको विज्ञापित और प्रचारित करना, यह बहुत बड़ा प्रमाण है उनके मिशनके प्रति श्रीभाईजीके आन्तरिक समर्थन एवं प्रत्यक्ष सहयोगका।

श्रीभाईजीने 'हरे कृष्ण आन्दोलन' की सफलताको केवल कल्याण पत्रिकामें प्रकाशित करके विराम नहीं ले लिया, अपितु इस सराहनीय सफलताके विवरणको जन-जनतक पहुँचानेके लिये वे एक पुस्तकके प्रकाशनका निर्णय ले चुके थे। पुस्तककी पाण्डुलिपि तैयार करनेका कार्य उन्होंने सौंप दिया भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ा एवं श्रीराधेश्यामजी बंकाको। इन दोनों बन्धुओंने लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों वाली पुस्तककी प्रेस-कॉपी तैयार करके श्रीभाईजीके सामने रख दी थी। बस, खेद यही है कि श्रीभाईजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके कारण वह पुस्तक मुद्रित होकर समाजके सामने आ नहीं पायी।

स्वामी श्रीप्रभुपादजीको सहयोग प्रदान करनेकी दृष्टिसे अबतक जो कार्य श्रीभाईजी द्वारा हुआ, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था गोरखपुरमें उन्हें ठहरनेके लिये स्थान देना तथा उनका अभिनन्दन करना। विश्व-भ्रमणके उपरान्त भारत वापस आनेपर जब स्वामी श्रीप्रभुपादजी देशके विभिन्न प्रदेशोंमें परिभ्रमण कर रहे थे, तब वे सन् १९७१ के फरवरी मासमें गोरखपुर भी पधारे थे। उनके पधारनेपर श्रीभाईजीने अपना श्रीकृष्ण निकेतन नामक बगीचा उन्हें ठहरनेके लिये दिया था, जो गीतावाटिकाके समान विशाल तथा हरा-भरा था और गीतावाटिकासे थोड़ी ही दूरपर स्थित था। श्रीकृष्ण निकेतनकी लहलहाती हरियालीके मध्य दो मंजिलवाली एक विशाल कोठी बहुत दिनोंतक स्वामी श्रीप्रभुपादजीके भक्तोंका आवास बनी रही तथा श्रीकृष्ण निकेतनमें रहते हुए वे लोग श्रीहरिनामका संकीर्तन एवं वितरण करते रहे।

श्रीकृष्ण निकेतनमें एक दिन स्वामी श्रीप्रभुपादजीने अपने परम पूज्य श्रीगुरुदेव महाराजका जन्म-दिवस सोत्साह मनाया। इस दिन देवाराधन एवं नाम-संकीर्तनके उपरान्त बहुत व्यक्तियोंको पुष्कल प्रसाद दिया गया। उस दिन अपने भक्तों एवं आगन्तुक नागरिकोंके समक्ष स्वामी श्रीप्रभुपादजीने गुरुभक्तिपर प्रवचन दिया। इस प्रवचनमें उन्होंने यह भी कहा— *जिन श्रीभाईजीसे श्रीमद्भागवतकी टीकाके प्रकाशनमें सहयोग मिला, जिन्होंने विश्वके कोने-कोनेमें हरिनाम प्रचारकी भावनाका समर्थन किया और विदेश-यात्राके लिये प्रेरणा दी, जिन्होंने अपनी विख्यात धार्मिक कल्याण पत्रिकामें हमारे प्रचारकार्यको प्रकाशित करके जन-जनके मनमें हमारे लिये स्थान बनाया और जिन्होंने गोरखपुरमें हमारे आवास एवं कार्यके लिये अपना यह श्रीकृष्ण निकेतन दिया, आज हम उन्हीं महानात्मा श्रीभाईजीके अतिथि बने हुए हैं। श्रीभाईजीने हमारा जैसा आतिथ्य किया और उनसे जैसा समर्थन, जैसी प्रेरणा, जैसा सहयोग, जैसा सद्भाव मिला, उसकी सराहनाके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।*

अपनी अत्यधिक रुग्णताके कारण श्रीभाईजी स्वामी श्रीप्रभुपादजीसे मिलनेके लिये नहीं

जा पाये, हाँ, एक दिन श्रीकृष्ण निकेतनसे स्वामी श्रीप्रभुपादजी ही गीतावाटिका आये श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये। आज लगभग नौ वर्ष बाद वे मिलनेके लिये आ रहे थे। आते समय वे सब बातें एक-एक करके उन्हें याद आ रही थीं कि किस प्रकार श्रीभाईजीने उनके मिशनके प्रति समर्थन एवं सहयोग प्रदान किया था। श्रीभाईजीने अपने कमरेमें स्वामी श्रीप्रभुपादजीका हार्दिक स्वागत किया तथा उनके द्वारा हो रहे महान कार्यकी सराहना की।

स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी श्रीमद्भागवतकी टीकाके अतिरिक्त अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। वे पुस्तकें उन्होंने श्रीभाईजीको भेंट की तथा विदेशोंमें उनके निर्देशनमें चल रहे श्रीकृष्णभक्तिके प्रचार-प्रसार-कार्यकी तथा भगवन्नाम एवं भारतीय संस्कृतिके प्रति विदेशोंमें बढ़ती हुई आत्मीयता एवं अभिरुचिकी सम्यक् जानकारी दी।

इसके बाद गीतावाटिकाके श्रीराधाष्टमी पंडालमें स्वामी श्रीप्रभुपादजीके प्रवचनका आयोजन था। इस आयोजनमें रुग्ण होते हुए भी श्रीभाईजी कमरेसे नीचे उतरकर पंडालमें आये। यह सम्भवतः १९७१ ई. की २० या २१ या २२ फरवरीका दिवस था। यह श्रीभाईजीके जीवनका अन्तिम अवसर था, जब वे नीचे उतरकर पंडालमें पधारे हों। पंडालमें पहले श्रीहरिनाम संकीर्तन बड़े उत्साहके साथ उपस्थित भक्तोंने किया। फिर श्रोताओंके समक्ष प्रवचन देते हुए स्वामी श्रीप्रभुपादजीने कहा—

मानव जातिमें वही मानव श्रेष्ठ है, जो श्रीकृष्ण भक्त है। भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति सर्व सुख प्रदान करती है। ऐसी श्रीकृष्ण-भक्तिको श्रीचैतन्य महाप्रभुने हरिनाम-संकीर्तनका अति सरल उपाय बतलाकर मानव मात्रके लिये सर्व सुलभ बना दिया है। कलियुगमें श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तनसे बढ़कर अन्य कोई सरल उपाय है ही नहीं और देश-विदेशमें हरिनाम-प्रचार करनेका कुछ प्रयास मेरे द्वारा हो रहा है। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपासे मुझे बड़ी सफलता मिली है और विदेशमें, मुख्यतः अमेरिकामें हरिनाम-संकीर्तनका खूब प्रचार हुआ है। भारतके पास श्रीकृष्ण-भक्ति एवं श्रीहरिनामकी ऐसी अतुल सम्पत्ति है, जिसे वह विश्व-शान्तिके अचूक उपायके रूपमें सारे विश्वको दे सकता है। मेरे पास श्रीभाईजी बैठे हुए हैं। श्रीभाईजी सच्चे वैष्णव हैं, वे परम श्रीकृष्णभक्त हैं। मेरे हरिनाम-वितरणमें उनसे समय-समयपर सहयोग मिला है और सदा मिलता रहे, यही उनसे अनुरोध है।

मंचपर स्वामी श्रीप्रभुपादजीके समीप ही श्रीभाईजी बैठे हुए थे। स्वामी श्रीप्रभुपादजीके प्रवचनके उपरान्त श्रीभाईजीने उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए समक्ष स्थित श्रोताओंसे कहा—

मेरी अस्वस्थताको देखकर घरवालोंने मुझे नीचे पंडालमें जानेसे मना किया, परंतु पूज्य श्रीमहाराजजीके सांनिध्यसे मैं वंचित रहना नहीं चाहता था, अतः मैं नीचे आया और मैं बहुत दिनों बाद नीचे उतरा हूँ। आज मैं कई माह बाद मंचपर बैठकर बोल रहा हूँ। मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है महाराजजीके कार्यको देखकर। नाम-प्रचारके द्वारा श्रीकृष्ण-भक्तिका वितरण देखकर मुझे बड़ा सुख मिल रहा है। यह दिव्य सेवा है। आज विश्व अशान्तिके दावानलमें दग्ध हो रहा है। उस ज्वालासे मुक्त होकर अखण्ड शान्ति पानेका एक मात्र साधन है श्रीकृष्ण-भक्ति, श्रीहरिनाम-संकीर्तन एवं संयमित जीवन। मानव जीवनको वही श्रीकृष्ण-भक्ति परम शान्ति एवं

अखण्ड आनन्दसे परिपूर्ण कर देती है, जो हरिनाम-संकीर्तन एवं संयमित जीवनसे सम्पुटित होती है। श्रीहरिनाम-संकीर्तनके प्रचारके साथ-साथ जीवनको संयमित बनाने वाले जिस आचार-संहिताके प्रति महाराजजीका आग्रह है, उस नियमावलीको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इससे श्रीकृष्ण-भक्ति जीवनमें सुदृढ़ हो जाती है। महाराजजीके द्वारा भगवान श्रीकृष्ण एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवद्‌भक्ति एवं हरिनामके प्रचारका जो कार्य करवा रहे हैं, यह प्रशंसनीय है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा था कि विश्वके नगर-नगर, ग्राम-ग्राममें श्रीकृष्णनामका प्रचार होगा। भगवानने कलियुगके जीवोंपर कृपा करके स्वामी श्रीभक्तिवेदान्तजी महाराजके द्वारा अमेरिका, यूरोप तथा जापान आदि देशोंके नगरोंकी गली-गलीमें भगवन्नाम-कीर्तनका प्रसार करवाके सम्भवतः उसीका सूत्रपात किया हो। विश्वके लोगोंको महाराजजीके कार्यसे बड़ा आश्वासन मिला है। मेरी आन्तरिक सद्‌भावना है कि श्रद्धेय महाराजजी जगतके लोगोंके जीवनको सदाचार सम्पन्न बनाकर नाम-प्रचारके द्वारा उनका कल्याण करनेमें सफल हों। यह महान कार्य भी भगवान श्रीकृष्णका ही है, हम तो केवल उसमें निमित्त मात्र बन जायँ। भगवत्कृपासे यह बहुत ही कल्याणकारी कार्य हो रहा है। महाराजजीने सहयोग देनेकी बात कही। कुछ समय पूर्व कल्याणमें महाराजजीके महान कार्यसे सम्बन्धित कुछ बातें प्रकाशित हुई थीं। अब एक परिचय पुस्तक छपवानेका विचार है, जिससे महाराजजीके कार्यकी महानताका परिचय लोगोंको मिल सके। हमारी वाटिकामें भी अष्ट प्रहरिया अखण्ड हरिनाम संकीर्तन विगत अढ़ाई सालसे चल रहा है। इसमें अधिकांश लोग नवद्वीपके ही हैं। इस समय मुझे बोलनेमें थकावटका अनुभव हो रहा है, अतः अन्तमें महाराजजीसे इसी शुभाशीर्वादके लिये प्रार्थना है कि जीवनके अन्तिम दिवसोंमें मति सदैव श्रीकृष्ण-चरणोंमें लगी रहे।

स्वामी श्रीप्रभुपादजीके सम्मानमें दिया गया यह अभिनन्दन भाषण ही श्रीभाईजीके जीवनका अन्तिम प्रवचन था, जिसके शब्द-शब्दमें प्रतिपादित है श्रीकृष्ण-भक्ति, श्रीकृष्ण-स्मृति, हरिनाम-संकीर्तन एवं सदाचारी जीवन। उनके जीवनकी जो परम दिव्य भाव निधि थी, उसका प्रतिपादन उन्होंने अपने अन्तिम प्रवचनमें भी किया। ■

श्रीगुलाबचन्दजी बोथरा

[१] प्रथम दर्शनमें अनुभव

सन् १९५२ के मई-जूनका महीना रहा होगा। बी-कॉमकी परीक्षा देकर मैं देशनोक (बीकानेर, राजस्थान) से रायपुर (मध्य प्रदेश) आ गया था। अनेक बार ग्रीष्मावकाशमें मैं रायपुर अपने ननिहाल आ जाया करता था। उस समय मेरी युवावस्था थी। आयु लगभग इक्कीस वर्षकी रही होगी। उन दिनों मेरे मनमें पता नहीं क्यों, किसी अज्ञात आकर्षणसे या पूर्व जन्मके संस्कारोंवशात् अपने तत्कालीन विषयाक्रान्त जीवनसे एक प्रकारकी वितृष्णा-सी हो गयी। मनमें प्राणोंको मथनेवाला विचारोंका एक तुमुल संघर्ष चलता रहता, अतः शान्ति पानेके लिये मैंने सद्ग्रन्थोंका अध्ययन करना शुरू किया। मैंने स्वामी रामतीर्थ, श्रीशिवानन्दजी

सरस्वती आदिकी पुस्तकें पढ़ी। 'कल्याण' नामक मासिक पत्रिकासे परिचय भी उन्हीं दिनों हुआ। स्वामी श्रीशिवानन्दजीकी पुस्तकोंके पढ़नेसे मन उनसे मिलनेके लिये और शान्तिका उपाय पूछनेके लिये लालायित रहने लगा।

मेरे नानाजीकी दुकानके एक कोनेमें एक स्वर्णकार सज्जन काम करते थे। खाली समयमें मैं कभी-कभी उनके पास बैठ जाता था। एक दिन अपनी मनोव्यथा उन्हें सुनाकर मैंने कहा— मेरा विचार डिवाइन लाइफ सोसाइटीके संस्थापक पूज्य स्वामी श्रीशिवानन्दजीके पास जानेका है।

मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा— स्वामीजी तो विदेश गये हुए हैं। आप गीताप्रेस, गोरखपुर चले जाइये। संभव है, आपका मनोरथ वहाँ पूरा हो जाय।

उनका सुझाव मुझे जँच गया। इसके पूर्व न तो मैंने कभी पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का नाम सुना था और न ही पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) का ही। कभी-कभार 'कल्याण' पत्रिकाको देखा-पढ़ा था। किन्तु गीताप्रेस या उससे सम्बन्धित किसी व्यक्ति-विशेषके प्रति कोई विशेष आस्था या आकर्षण नहीं था। जो भी हो, उन सज्जनकी बात दैवी प्रेरणासे ऐसी गले उतरी कि मैंने गोरखपुर जानेका निश्चय कर लिया। गर्मीकी छुट्टियाँ समाप्त हो जानेके बाद मुझे रायपुरसे वापस देशनोक जाना था। मैंने घरवालोंसे कहा कि मैं गोरखपुर होते हुए जाऊँगा। उसपर नानाजी, माताजी, मामाजी आदिको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन लोगोंने बहुत विरोध किया, पर मेरे हठको देखकर अन्तमें उन्होंने सपत्नी गोरखपुर जानेकी स्वीकृति दे दी।

गोरखपुर पहुँचकर पहले मैं गीताप्रेस गया। वहाँ पता चला कि गीताप्रेसके संचालक पूज्य श्रीसेठजी यहाँ नहीं हैं और पूज्य बाबूजी यहाँसे करीब अढ़ाई मील दूर गीतावाटिकामें रहते हैं। उन्होंने ताँगेवालेको समझा दिया। ताँगा गीतावाटिकाकी तरफ बढ़ने लगा। सावनका महीना था, कुछ-कुछ बादल भी छाये हुए थे। मार्गमें अँधेरा था। जैसे ही धर्मशाला-स्थित रेलवे पुलके नीचेसे ताँगा आगे बढ़ा, वहाँ दूर-दूरतक एकाध चिरागकी रोशनीके अलावा घना अँधेरा था। मन सहज ही आसपासके जंगल एवं सन्नाटेको देखकर सशंकित हो उठा। उन दिनों गीतावाटिकाके समीपवर्ती सभी क्षेत्रोंमें आम एवं अमरूदके बड़े-बड़े बाग थे। मेरी धर्मपत्नीके शरीरपर स्वर्णाभूषण थे। स्थान नवीन होनेसे मन ज्यादा भयाक्रान्त हो गया। किसी भी आसन्न विपत्तिका सामना करनेके लिये मैं सजग होकर ताँगेपर बैठ गया। धीरे-धीरे उस सघन अटवीको पार करके ताँगा जब गीतावाटिकाके द्वारपर पहुँचा, तब मन शान्त हुआ।

मैं गीतावाटिका पहुँचा था सन् १९५२ ई. के जुलाई मासमें शनिवारके दिन। यहाँ मुझे एक कमरेमें ठहराया गया और मेरी धर्मपत्नीको पूज्य बाबूजीकी सुपुत्री आदरणीया सावित्रीबाई तथा पूज्या माँके पास ठहरा दिया गया। मेरे रहने-खाने-पीने-सोनेकी जरूरतसे अधिक व्यवस्था की गयी और इस सेवा-सँभालका मेरे मनपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा कि एक सर्वथा नवीन आगन्तुक व्यक्तिका कितना अधिक स्वागत-सत्कार किया जा सकता है। पूज्य बाबूजीका संकेत ही इस सारे स्वागत-सत्कारका प्रेरक था। इस सत्कारका संस्कार मेरे लिये अमिट हो गया।

मुझे बताया गया कि पूज्य बाबूजीसे मेरी भेंट अगले दिन रविवारको सबेरे हो पायेगी। मैं

जल्दीसे नहा-धोकर तैयार हो गया और बुलाहटकी प्रतीक्षा करने लगा। व्यस्तताके कारण पूज्य बाबूजी समय शामको ही निकाल पाये और तभी मुझे बुलाया गया। मेरे जाते ही पूज्य बाबूजीने कहा— दरवाजेकी सिटकनी लगा दो।

उनकी आज्ञा मिलते ही मैंने सिटकनी बन्द कर दी। अब कमरेमें केवल वे और मैं, बस, दो ही व्यक्ति थे। ज्यों ही मैं उनके सामने बैठा, ऐसा लगा कि चिरकालतक पृथक् रहनेके बाद सहसा किसी प्रियजनसे मिलन हो गया हो या बहुत तृषित रहनेके बाद किसी प्यासेको शीतल जल प्राप्त हो गया हो, इसी प्रकारकी अशेष तृप्ति एवं अखण्ड आनन्दका बोध उस समय हुआ।

इस प्रथम दर्शनमें ही मन मुग्ध हो गया। पूज्य बाबूजीकी उस अमृतमयी दृष्टि एवं स्नेहमयी भावभंगिमाकी मधुरताने मनको ऐसा मोह लिया कि शब्दोंमें उस समयकी मनस्थितिका चित्रण सम्भव नहीं है। ऐसा लगा कि इस दिव्यमूर्तिका अंग-प्रत्यंग अन्तर्बाह्य ऐसे अमृत तत्त्वसे गठित है, जो इस मर्त्य भूमिपर प्राकृतके सदृश दृग्गोचर होनेपर भी सर्वथा अलौकिक है। मेरे मनमें सहसा एक भावात्मक उफान आया। मैं अपनी हीनता-दीनता-अल्पज्ञता-असमर्थता-कलुषतासे भरी सम्पूर्ण जीवन गाथा सारांशमें उन्हें कह गया। कहते-कहते मैं फूट-फूट करके रो पड़ा। आज मुझे भी इस रोदनपर आश्चर्य हो रहा है। मुझे स्मरण नहीं आता कि कभी किसीके सामने इस प्रकार विकल होकर मैं रोया होऊँ, पर उस दिन, उस क्षण न जाने कैसा भावात्मक आवेग आया कि मैं बरबस रो पड़ा। खूब रोया और देरतक रोता रहा। मुझे सान्त्वना और शान्ति देनेके लिये पूज्य बाबूजी बराबर मुझे सहलाते रहे। उस अमृतमय स्पर्शमें सीमातीत वात्सल्य था, कल्पनातीत आत्मीयता थी, अनुमानातीत आश्वासन था। उन्होंने बड़ी ही प्यार भरी वाणीमें कहा— *तुम सर्वथा निष्पाप हो, सर्वथा निर्मल हो, तुम विश्वास करो, मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे हो। तुम पूर्णतः चिन्तारहित हो जाओ।*

बातचीतके प्रसंगमें रुद्राक्षकी मालाकी बात चली। उन्होंने तुरन्त अपने गलेमें पहनी हुई रुद्राक्षकी माला उतारकर मुझे दे दी और रह-रह करके वे मुझे प्यारभरा आश्वासन देते रहे। इस तरह लगभग दो-अढ़ाई घंटे ऐसे व्यतीत हो गये कि कुछ पतातक नहीं चला। जब मैं उठा, तब उनके प्यारसे संसिक्त मेरा रोम-रोम किसी अननुभूत आनन्दसे परिप्लुत था। स्वयंको मैं अत्यन्त हल्का अनुभव कर रहा था मानो मेरे मनपर किसी प्रकारका भी कोई बोझ अब नहीं रहा। मैं अनुभव कर रहा था कि संत-चरणका प्रथम दर्शन एवं संत-वाणीका प्रथम आश्वासन जीवनको किस भाँति और कितना अधिक प्रसन्नता एवं प्रफुल्लतासे परिपूर्ण कर देता है। जैन-मतावलम्बी होनेके कारण मैं जानता ही नहीं था कि भगवत्प्राप्ति भी कोई प्राप्तव्य स्थिति होती है। गोरखपुर आनेके पूर्वतक न मैं पूज्य बाबूजीको जानता था और न मैं भगवत्साक्षात्कारी संतके महत्त्वको समझता था, पर एक सिद्ध संतका प्रभाव क्या होता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव गोरखपुरकी इस यात्रामें मिला। मैं अगले दिन सोमवारको पूज्य बाबूजीसे विदाई लेकर अपनी धर्मपत्नीके सहित देशनोक चला आया।

मेरे मनमें अब उनके प्रति एक तीव्र आकर्षण उत्पन्न हो गया। उनकी स्मृतिसे अब मेरे मनमें मधुरिमा और पवित्रताकी ऐसी लहर उठती रहती, जो अनिर्वचनीय थी।

[२] व्यावहारिक कुशलता

पूज्य बाबूजीके आदेशानुसार गोरखपुरसे मैं देशनोक वापस आ गया, पर घरपर मेरा मन नहीं लग रहा था। लगता था जैसे दीवारें काट खायेंगी। बार-बार पूज्य बाबूजीके पास जाने-रहने, उठने-बैठनेकी बलवती इच्छा मनमें होती। मैंने अपनी मनोव्यथा माँसे कही। उसने मेरे पूज्य पिताजीसे कहा। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। कोई चारा न देखकर मैं बिना बताये देशनोकसे पैदल ही चल पड़ा, पर अगले स्टेशन पलानामें मेरे चाचाजी मुझे खोजते हुए आये और मुझे वापस लौटा ले गये। मैं लौटा लाया गया, पर मेरा मन तो गोरखपुर जानेके लिये व्यग्र था। एक दिन अवसर देखकर मैंने घरमें बिस्तरपर एक पत्र लिखकर रख दिया और अँधेरे-अँधेरे ही देशनोकसे पैदल लगभग बीस मीलका रेतीला रास्ता तय करके मैं बीकानेर आया। वहाँ अपने एक परिचित सज्जनसे रुपया उधार लेकर मैं गोरखपुर आ पहुँचा। गोरखपुरमें गीतावाटिकाके प्रवेशद्वारपर ही पूज्य बाबूजी मिल गये। मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा। मुझे उठाकर उन्होंने पहला प्रश्न यही किया— क्या घरसे बिना पूछे आये हो ?

मैं क्या उत्तर देता, चुपचाप आँखें नीची किये खड़ा रहा। मेरी चुप्पीने स्वयं ही उत्तर दे दिया कि मैं बिना बताये आया हूँ। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि कैसे उनको यह सब ज्ञात हो गया। स्नानोपरान्त जब उनसे मिला, तब उन्होंने पूछा— यात्रा-व्ययके लिये किससे कितने रुपये लिये ?

मैंने सब बता दिया। उन्होंने तुरन्त उन सज्जनको वह राशि मेरे द्वारा मनीआर्डरसे भिजवा दी। इसके साथ ही उन्होंने मेरे घरपर तत्काल तार एवं पत्रद्वारा सूचना भिजवा दी कि गुलाबचन्द सकुशल गोरखपुर पहुँच गया है। पूज्य बाबूजीकी व्यावहारिक क्षेत्रमें भी ऐसी कुशलता और सावधानी देखकर मन बड़ा प्रभावित हुआ।

कुछ दिनोंके बाद पूज्य बाबूजीने मुझे समझा-बुझाकर वापस देशनोक भेज दिया। वे बात-बातमें प्रायः मुझे यही समझाया करते थे कि माता-पिताकी सेवा ही परम धर्म है, उससे सभी प्रकारकी अभीष्ट-सिद्धि हो जाती है।

पूज्य बाबूजीकी आज्ञाको मैंने शिरोधार्य कर लिया और उनके वियोग जन्य दुखकी बोझिलताको मनपर लिये-लिये मैं देशनोक वापस आ गया। यहाँ किसी भी कार्यमें न मन लगता और न प्रवृत्ति ही होती। लाचार होकर मैं फिर अपनी मानसिक स्थितिका चित्रण एक पत्रमें लिखकर और उसे बिस्तरपर छोड़ उसी प्रकार पुनः बीस मील पैदल चलकर बीकानेर आया। वहाँ फिर किसीसे रुपये लेकर टिकिट कटवाकर गोरखपुर आ गया। पुनः पूज्य बाबूजीने मुझे उसी पूर्ववत् प्यारसे अपने पास रखा। उन्होंने एक क्षण भी मेरी भावुकताको तिरस्कार भरी दृष्टिसे नहीं देखा। थोड़े दिनों बाद पूज्य बाबूजीने पुनः मुझे समझा-बुझाकर घर भेज दिया। मैंने अनुमान लगाया कि जबतक मैं इस प्रकार भाग-भागकर जाऊँगा, तबतक पूज्य बाबूजी मुझे अपने पास नहीं रखेंगे।

जब तीसरी बार घरसे चलने लगा तो घरवालोंसे आज्ञा लेकर चला और गोरखपुर पहुँचा तो पूज्य बाबूजीने अपने पास रखा। गीतावाटिकामें रहते समय साधनाके नामपर जप-पाठ-स्वाध्याय तो थोड़ा बहुत चलता ही था, एक दिन पूज्य बाबूजीने पूछा— कोई

काम करोगे ?

मैंने कहा— आप जो कहेंगे, वही मुझे करना है।

उन दिनों बाढ़ पीड़ित क्षेत्रोंमें गीताप्रेसकी ओरसे सेवा-कार्य चल रहा था। पूज्य बाबूजीने सेवा-दलके कार्य-कर्ताओंके साथ मुझे भेज दिया। सेवा-कार्य एक-डेढ़ माहतक चला। सेवा-कार्य बन्द होनेके बाद पूज्य बाबूजीने मुझे गीताप्रेसमें कार्य करनेके लिये भेजा, पर भेजनेकी पद्धति भी पूज्य बाबूजीकी अपनी ही थी। गीताप्रेसके प्रधान प्रबन्धक श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठियाको बुलाकर पूज्य बाबूजीने कहा— यह कार्य तभीतक करेगा, जबतक इसका मन होगा। जब यह गीतावाटिका आने लगे तो इसे रोका न जाय।

मुझे आश्चर्य होता था कि क्या पूज्य बाबूजी अपने पासमें रहनेवालोंकी और अपने मातहत कार्य करनेवालोंकी भावनाओंका इतना अधिक ध्यान रखते हैं। ऐसा तो कभी भी मेरे देखने-सुननेमें नहीं आया। मैं गीताप्रेसमें अब दत्तचित्त होकर कार्य करने लगा, पर वहाँ सर्वथा मेरी रुचिको महत्त्व प्रदान किया गया।

इस बीचमें और भी कई प्रकारके सोपान आये और कई परिवर्तन हुए, पर अन्तमें सन् १९५६ ई. में पूज्य बाबूजीने अपने सम्पादकीय विभागमें मुझे ले लिया और मैं गीतावाटिकामें ही स्थायी रूपसे काम करने लगा। इस अवधिमें मुझे सतत देखनेको मिला कि एक भगवत्साक्षात्कारी परम सिद्ध संत होते हुए भी पूज्य बाबूजी व्यावहारिकतामें कितने कुशल हैं, जागतिकतामें कितने सावधान हैं और पारस्परिकतामें कितने हितैषी हैं।

पूज्य बाबूजीकी व्यावहारिक कुशलताका एक और उदाहरण है। प्रारम्भमें जब-जब मुझे उन्होंने देशनोक भेजा तो मैं वहाँ उनसे पत्र-व्यवहार करता था। मेरे मनमें यह सन्देह बना रहता था कि मुझे घरके पतेसे पत्र मिलेंगे या नहीं, अतः मैंने अपने एक मित्रका पता पूज्य बाबूजीको लिख दिया। अब वे उसी मित्रके पतेसे पत्र देने लगे। लिफाफेके ऊपर केवल मित्रका ही नाम-पता रहता था। उस लिफाफेके अन्दर मेरे नामका एक बन्द लिफाफा रहता था। साथ-साथ समानान्तर एक खुला पोस्टकार्ड या लिफाफा अलगसे मेरे घरके पतेसे मुझे देते थे। उन सभी पत्रोंमें मेरे लिये अतिशय प्यारसे भरी सीख रहती थी। लिफाफाके सहित वे सभी पत्र जीवनकी निधिकी भाँति आज भी मेरे पास सहेजकर रखे हुए हैं। ऐसे वात्सल्य एवं प्यारसे भरे अनेक अवसर जीवनमें आये, जो आज भी मेरे हृदयपटलपर अंकित हैं।

[३] घावकी मरहम-पट्टी

मुझे गोरखपुर आये डेढ़-दो साल ही हुआ होगा। उसी बीच मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ देशनोकसे आयी थी। उस समय पृथक् रहनेकी व्यवस्था नहीं थी, अतः पूज्य बाबूजीने मेरी धर्मपत्नीके रहनेकी व्यवस्था पूजनीया माँजीके पास ही कर दी थी।

एक बार मेरी धर्मपत्नीकी कोहनीके पास एक बड़ा-सा फोड़ा हो गया और घाव पक गया। मेरी धर्मपत्नीको पूज्य बाबूजीने अपनी सगी बेटी-सा वात्सल्य दिया। ज्यों ही पूज्य बाबूजीको इसकी जानकारी मिली, उन्होंने उसे बुलाकर घावको देखा और स्वयं अपने हाथसे उसके घावको धोकर दवा लगायी और पट्टी बाँध दी। यह क्रम कई दिनोंतक चला। पूज्य बाबूजी अपने पास गर्म पानी, रूई, दवा, पट्टी आदि मँगवा लेते और कोठीके हॉलमें मरहम-पट्टी करते।

चार-पाँच दिनोंके बादकी बात है। पूज्य बाबूजी उस दिन अत्यधिक व्यस्त थे, अतः उन्होंने मुझे कहा– गुलाब ! आज तुम घाव धोकर पट्टी बाँध दो। यहाँ गर्म पानी आदि सब रखा हुआ है। इस समय मुझे थोड़ी जल्दी है।

इतना कहकर पूज्य बाबूजी हॉलके बगलवाले कमरेमें संध्या-वन्दन करनेके लिये आसनपर बैठ गये। उस कमरेके बीचो-बीच एक दरवाजा था, जो हॉलमें खुलता था। वहाँसे वे बीच-बीचमें संध्या करते-करते नजर डाल लिया करते थे। मैं घाव धो रहा था। उसके आसपासकी चमड़ी मुरझा-सी गयी थी, अतः मैंने उसे खींचकर हटाना शुरु किया। दर्दके कारण मेरी धर्मपत्नीके मुखसे कराहनेकी आवाज निकली। उसे सुनते ही तुरन्त पूज्य बाबूजी संध्या-वन्दन अधूरा छोड़कर आसनसे उठे और मुझे डाँटने लगे– कहीं ऐसे घाव धोया जाता है ? दर्दके मारे यह कराह उठी और इसके आँसू निकल आये। हटो, अब मैं ही इसकी पट्टी बाँधूँगा।

मैं पीछे हट गया। पूज्य बाबूजीने फिर स्वयं सारा कार्य किया और प्रतिदिन करते रहे, जबतक कि वह घाव ठीक नहीं हो गया। चाहे जितनी व्यस्तता हो, घावकी मरहम-पट्टीके लिये पूज्य बाबूजी समय निकाल ही लेते थे। यह कार्य डाक्टरकी बात क्या, किसी भी नर्स या कम्पाउण्डरके द्वारा करवाया जा सकता था, पर उनको तो एक जीवात्माका कल्याण करना था और उसके अन्तःकरणमें 'जीवनकी सुवास' भरनी थी। वस्तुतः वे तो चिकित्साके बहानेसे जन्म-जन्मके घावोंकी मरहम-पट्टी कर रहे थे।

[४] स्नेहमय व्यवहार

मेरी प्रथम पुत्री चम्पा लगभग छः माहकी रही होगी, उन दिनों वह अपने ननिहाल डूँगरगढ़ गयी हुई थी। डूँगरगढ़ राजस्थानमें रतनगढ़के पास ही एक छोटा-सा नगर है। पूज्य बाबूजी रतनगढ़ गये हुए थे। पूज्य बाबूजीको सत्संगके लिये स्थान-स्थानपर जाना पड़ता था। एक बार डूँगरगढ़-निवासियोंने पूज्य बाबूजीको सत्संगके लिये बुलाया और पूज्य बाबूजी वहाँ गये। पूज्या माँजी भी साथमें गयी थीं।

सत्संगमें चम्पाकी माँ एवं उसकी बड़ी बहन मनोहरी बाई भी पूज्य बाबूजीका आना सुनकर गयी। संत्सगके बाद पूज्य बाबूजीने डूँगरगढ़ निवासी श्रीवृद्धिचन्दजी मूँधड़ासे पूछा– गुलाबचन्दका ससुराल कहाँ है।

उन्होंने हाथसे संकेत करते हुए बताया– बस, पास ही वह सामनेकी तरफ है।

उसके बाद वे तुरन्त ही मेरे ससुरालके घरकी तरफ चल पड़े। घरमें सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़कर गये। उनके इस अप्रत्याशित आगमनसे सभी परिवारवाले आश्चर्य एवं आनन्दसे अभिभूत हो गये। पूज्य बाबूजीके इस उन्मुक्त एवं सरल स्वभावकी सभीके हृदयपर अमिट छाप पड़ गयी। मैं उस समय वहाँ नहीं था, मेरे श्वसुरजी एवं साले आदि भी कोई नहीं थे। घरमें वृद्धा सास, मेरी पत्नी एवं उसकी बहन थी। मेरी सालीने यह सोचकर कि पूज्य बाबूजी आचार-विचारवाले हैं, उसने बड़े ही संकोचसे पूज्य बाबूजीसे प्रार्थना की– आप हम ओसवालोंके घर और तो कुछ नहीं लेंगे, पर मेवा तो स्वीकार कर ही सकते हैं ?

पूज्य बाबूजीकी प्रसन्न अनुमति पाकर उसने मेवा एवं कुएँका ताजा जल मँगवाकर सामने रख दिया। प्रेममूर्ति बाबूजीने बड़े चावसे उसे खा लिया। फिर उन्होंने पुत्री चम्पाको गोदमें लेकर

उसे प्यार किया और उसके हाथमें आशीर्वादस्वरूप कुछ रुपये दिये। उनके उस आत्मीयतापूर्ण स्नेहमय व्यवहारसे सभीका हृदय अतिशय आनन्दसे भर गया। फिर मेरी सासने राजस्थानकी पुरानी परम्पराके अनुसार सम्मान-दानके प्रतीकस्वरूप दूध एवं चीनी पूज्या माँजीके पास भिजवायी। उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस तरह अपने हृदयके अपरिसीम स्नेहका दान करके पूज्य बाबूजी विदा हुए। सभीके मन-मस्तिष्क उनके उदात्त-उन्मुक्त स्वभावकी अमृतमयी स्मृतिसे सरावोर थे।

[५] विक्षिप्तताकी दवा

बात उस समयकी है, जब मेरी धर्मपत्नीकी गोदमें डेढ़ वर्षीया बालिका चम्पा थी। चम्पाकी माँको हिस्टीरिया हो गया। यह रोग बढ़ता गया और उसकी विक्षिप्तता बढ़ती गयी। हमलोग गीतावाटिकाके बाहर एकदम सटे हुए एक मकानमें रहते थे। बीमारीके कारण अनेक बार वह भोजन नहीं करती थी, इससे रोग बढ़ जाता था। उस समय वह दवा आदि भी नहीं लेती थी। रातभर उसे नींद नहीं आती थी। एक बार तो दो दिन बीत गये, न उसने स्नान किया और न भोजन ही किया और न वस्त्र ही बदले। रात्रिमें दवा देनेपर उसे फेंक देती थी। उसकी विक्षिप्तता अधिक बढ़ गयी और मुझसे कहती कि कोई दरवाजा खटखटा रहा है, बुला रहा है और स्वयं उठकर दरवाजा खोलनेके लिये जाना चाहती। बहुत हठ करनेपर मैं दरवाजा खोल भी देता और फिर 'कोई नहीं है' यह कहकर मैं द्वार बन्द कर लेता। मैं किसीसे संकोचवश कुछ नहीं कहता था, पर रातमें जागनेसे मेरी परेशानी भी बहुत बढ़ गयी। इस भीषण रुग्णतामें एक विचित्र बात देखनेको मिली। मैं अपनी धर्मपत्नीसे पूछ बैठा– इस संसारमें तुमको सबसे अधिक प्रिय कौन लगता है?

मेरी पत्नीने उसी विक्षिप्तावस्थामें सहज ही कहा– बाबूजी मुझे सबसे प्रिय लगते हैं।

एक जैन महिलाके हृदयपर साकारोपासक पूज्य बाबूजीके वात्सल्यका ऐसा 'साम्राज्य'! मेरे विस्मयकी सीमा नहीं थी। अस्तु, यह बात तो बीचमें ही मैं इसलिये कह गया कि यह तथ्य मुझे कभी भूलता नहीं।

इस प्रकार जब मेरी पत्नीको बिना खाये, बिना नहाये, बिना सोये और बच्चीको बिना दूध पिलाये तीसरा दिन बीतने लगा तो मैं घबरा उठा। मैं पूज्य बाबूजीके पास गया और अपना कष्ट सुनाया। संयोगसे उस दिन छोटी श्रीराधाष्टमी थी, कार्तिक कृष्णा अष्टमीवाली। मेरी सारी बातें एवं परेशानी सुनकर उन्होंने कहा– आरतीके बाद तुम चम्पाकी माँको मेरा नाम लेकर बुला लाना।

मैं घर गया और उससे कहा– तुमको बगीचेमें बाबूजीने बुलाया है।

पूज्य बाबूजीका नाम सुनते ही वह यन्त्रवत जिस हालतमें थी, उसी हालतमें चल पड़ी। उसने तीन दिनसे न स्नान किया था और न कपड़े बदले थे, पर पूज्य बाबूजीके नामपर मैले वस्त्र, बिखरे बाल, अनसँवरा मुख इसी रूपमें वह चल दी भीड़की बिना परवाह किये। उसे भीड़से क्या मतलब, वह तो पूज्य बाबूजीके बुलानेपर बाबूजीके पास आयी थी। मैंने बाबूजीसे उसके आ जानेकी सूचना दी।

पूज्य बाबूजी उस समय आँगनमें स्थित पूजागृहमें थे। उन्होंने उसको सामनेवाले कमरेमें

बैठानेके लिये कहा। मैंने उसे उस कमरेमें लाकर बैठा दिया। वह चुपचाप बैठ गयी। अनिद्रा, अनाहार, विक्षिप्तावस्थाके कारण घरपर जिस 'उपद्रव' का सामना मुझे करना पड़ता था, उस प्रकारकी कोई परेशानी मुझे यहाँ नहीं झेलनी पड़ी। वह सामान्यकी भाँति बैठी रही। थोड़ी ही देरमें पूजा-आरती सम्पन्न करके पूज्य बाबूजी कमरेमें आ गये। कमरेमें आते ही पूज्य बाबूजीने पूछा– कुछ खाओगी ?

उसने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया। तब पूज्य बाबूजीने मुझे प्रसादकी एक परई लानेको कहा और मैं भागकर ले आया। अब पूज्य बाबूजी स्वयं अपने हाथसे उसे कौर खिलाने लगे। परईमें प्रसादकी एक पूड़ी, कढ़ी, भात, साग आदि था। आज तीसरे दिन उसके मुखमें अन्नका कण जा रहा था। उसको परईका सारा प्रसाद खिला चुकनेके बाद, पूज्य बाबूजीने पूछा– और खाओगी।

उसने सिर हिलाकर अनुमोदन किया। मैं भागकर दूसरी परई ले आया। इस परईका आधा अंश ही वह खा पायी। उसके बाद पूज्य बाबूजीने उससे कहा– अब घर जाओ, आराम करो और रातमें कुछ भोजन कर लेना।

वह घर आयी। कुछ देर पश्चात् उसने स्नानादि करके भोजन बनाया। मुझे खिलाया एवं स्वयं भी खाया। सब कुछ स्वाभाविक हो रहा था। रातमें दवा लेनेको जब कहा तो उसने इन्कार कर दिया। तब मैं पुनः पूज्य बाबूजीके पास गया और दवा न लेनेकी बात बतायी। तब पूज्य बाबूजीने कहा– मेरा नाम लेकर कहना कि बाबूजीने दवा लेनेको कहा है।

उसको ऐसा कहनेपर पूज्य बाबूजीने जो बायोकेमिक दवा बतायी, उसे वह बराबर लेती रही और वह विक्षिप्तता सदाके लिये दूर हो गयी। यह विक्षिप्तावस्था तब हुई थी, जब चम्पा मात्र डेढ़ वर्षकी थी। अब तो बेटी चम्पाका विवाह भी हो गया है और उसके बच्चे भी हो गये हैं, पर शिशु चम्पाकी माँको जो विक्षिप्तता तब हुई थी, वह फिर कभी नहीं हुई। पूज्य बाबूजीने जो दवा बतायी, वह तो एक बहाना मात्र था, पर वस्तुतः उनके छलछलाते वात्सल्यसे भरा अहैतुक अनुग्रह ही उसकी रोग निवृत्तिमें मुख्य हेतु था।

[६] मेरी पत्नीको स्नेहाशीर्वाद

सन् १९६२ में मैं अस्वस्थ हो गया और वृन्दावनमें रहकर अपनी चिकित्सा करवा रहा था। उस समय मेरी धर्मपत्नी गोरखपुरमें अकेली ही रह रही थी। तब उसके पास मेरी सबसे छोटी पुत्री मदालसा थी। मेरी बीमारीका समाचार जानकर मेरी धर्मपत्नीको बुलानेके लिये घरवालोंका तथा ससुरालवालोंका पत्र पूज्य बाबूजीके पास आया। एक तरफ मेरे घरवालोंने देशनोक भेजनेके लिये लिखा था तो दूसरी तरफ मेरे ससुरालवालोंने माथाभाँगा (कूचविहार) भेजनेके लिये। पूज्य बाबूजीने मेरी धर्मपत्नीके पास अपना व्यक्ति भेजकर पुछवाया कि तुम्हारा कहाँ जानेका मन हैं ? इसी पूछताछमें सारा दिन निकल गया, पर समाधान नहीं हुआ। शामके समय पूज्य बाबूजीने मेरी धर्मपत्नीको बुलवाया और उससे कहा– जैसा तुम चाहोगी, उसी अनुसार व्यवस्था कर दी जायेगी। तुम्हारा कहाँ जानेका मन है ?

मेरी धर्मपत्नीने कहा– बाबूजी, आप जहाँ कहेंगे, वहीं चली जाऊँगी। मुझे तो कुछ भी

समझमें नहीं आ रहा है।

इसपर पूज्य बाबूजीने कहा– ठीक है। तुम मेरे साथ ही चलो। मैं रतनगढ़ जा ही रहा हूँ। वहींसे तुम देशनोक चली जाना। मैं भिजवा दूँगा।

देशनोक रतनगढ़के पास ही है। इस निश्चयके होते ही दोनों स्थानोंपर यथा-योग्य समाचार दे दिये गये। कुछ दिनों बाद ही देशनोक जानेके लिये वह पूज्य बाबूजीके साथ गोरखपुरसे रवाना हो गयी। उसके साथमें दो वर्षीया पुत्री मदालसा भी थी। बादमें मिलनेपर उसने दिल्ली स्टेशनका जो प्रसंग सुनाया, वह बड़ा ही हृदयस्पर्शी है। गोरखपुरसे रवाना होकर सभी लोग दिल्ली आये। वहाँ पूज्य बाबूजीके साथ दो दिन दिल्लीमें ठहरना पड़ा। फिर रतनगढ़ जाना था। सभीलोग बीकानेर मेलमें बैठनेके लिये दिल्ली स्टेशनपर आये। पूज्य बाबूजी जहाँ भी जाते, वहाँ आगे-से-आगे उनकी एवं उनके साथ जानेवालोंकी व्यवस्था रहती, अतः मेरी धर्मपत्नीको जिस डिब्बेमें बैठाया गया था, उसमें वह और उसके साथ श्रीलीलाबाई, श्रीभगतजी आदि कई लोग थे। सबका रिजर्वेशन था।

पूज्य बाबूजी स्टेशनपर आये तो उनके सम्मानमें तथा उन्हें विदाई देने हेतु सैकड़ों लोग स्टेशनपर आये थे। प्लेटफार्मपर बड़ी भीड़ थी। गाड़ी छूटनेमें अब विलम्ब नहीं था, उसी समय पूज्य बाबूजीने उपस्थित प्रबन्धकर्तासे पूछा– चम्पाकी माँ कहाँ बैठी है?

भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा– उसे पासवाले डिब्बेमें अच्छी तरहसे बैठा दिया गया है।

इसपर पूज्य बाबूजीने कहा– जरा मैं देख लूँ।

यह कहकर बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये वे चुपचाप शीघ्रतासे जिस डिब्बेमें वह बैठी थी, उसमें चढ़ गये। वे चाहते तो खिड़कीके बाहरसे भी उसका कुशल-क्षेम पूछ सकते थे, पर उनका प्रयोजन तो कुछ दूसरा ही था। जब वे डिब्बेमें चढ़ने लगे तो भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा– बाबूजी! डिब्बेमें बहुत भीड़ है, समय हो चुका है, गाड़ी छूट जायेगी।

पूज्य बाबूजीने उनसे कहा– मुझे उसे देख लेने दो। वह बड़े संकोची स्वभावकी है। पता नहीं वह ठीकसे बैठी भी है या नहीं, उसके साथमें छोटी बच्ची भी है।

भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने तथा अन्योंने उन्हें रोकनेकी बड़ी चेष्टा की और गाड़ीके छूट जानेकी बात कही, पर पूज्य बाबूजी सबकी बात अनसुनी करके मेरी धर्मपत्नीकी ओर बढ़े और कहा– इससे मुझे कुछ बात करनी है।

यह सुनकर मेरी धर्मपत्नीके पास बैठे हुए लोग थोड़ा दूर सरक गये। पूज्य बाबूजी उसके पास आये और सिरपर हाथ रखकर एक लिफाफा देते हुए धीरेसे कहा– देख, इसे रख ले। मैं तेरे लिये ही आया हूँ।

पूज्य बाबूजीका ऐसा अद्‌भुत स्नेह देखकर मेरी धर्मपत्नी तो एकदम गल गयी, वह पानी-पानी हो उठी। उन्होंने ऐसे ढंगसे लिफाफा दिया कि कोई जान न सका। उस लिफाफेमें स्नेहाशीर्वादके प्रतीक स्वरूप कुछ रुपये थे। ऐसा अप्रतिम स्नेह था उनका!

उसके बाद वे उस डिब्बेसे उतरकर अपने डिब्बेमें चले गये। रतनगढ़ पहुँचकर उन्होंने मेरे घरसे आये हुए आदमीके साथ मेरी धर्मपत्नीको देशनोक भिजवा दिया। ■

सौ. श्रीझमकूदेवी बोथरा

प्यार ही प्यार दिया

मथुरामें पूज्य बाबूजीके द्वारा श्रीभागवत भवनका शिलान्यास शायद १९६५ के फरवरी मासमें हुआ था। उस समय मैं देशनोकमें थी। अचानक मथुरासे मेरे श्वसुरजीके पास पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का बहुत ही अनुरोध भरा तार आया। उस तारमें निवेदन किया गया था— बीकानेरसे गोस्वामी परिवार मथुरा आनेवाला है। आप चम्पाकी माँको गोस्वामी-परिवारके साथ मथुरा भेज दीजिये। श्रीगुलाबचन्द बोथरा हमलोगोंके साथ है।

मेरे श्वसुरजीका मन कम ही था, पर फिर घरमें माताजीसे विचार-विमर्श करके उन्होंने मुझे बीकानेर गोस्वामी-परिवारके पास पहुँचा दिया। उनके साथ मथुरा पहुँचनेपर जब मैंने पूज्य बाबूजीको प्रणाम किया, तब उन्होंने बड़े ही प्यारसे मेरा कुशल-क्षेम पूछा। उस यात्रामें उनकी अहैतुकी कृपासे उनके कर-कमलोंसे सम्पन्न हुए भागवतभवन-शिलान्यासको देखनेका दुर्लभ सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। उसी यात्रामें वृन्दावनके विभिन्न देव-मन्दिरों, गोवर्धन-परिक्रमा, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, कुसुमसरोवर आदिके दर्शनका एवं उनमें स्नानका सौभाग्य मिला। बरसानेमें पूज्य बाबाजीकी अद्भुत भावमयी स्थिति एवं श्रीराधाजीके मन्दिरके दर्शन एवं वहाँ प्रसाद-ग्रहणका अनुपम सुख एवं सौभाग्य मिला, जो मेरे लिये नितान्त असम्भव था। यदि वे मुझे न बुलाते तो यह सब सौभाग्य मुझे कदापि प्राप्त न होता।

इसी यात्राके दौरान उनके वात्सल्यपूर्ण स्नेहकी एक अमिट स्मृति मेरे मनपर और है। न मैं पढ़ी-लिखी हूँ और न ही मुझमें कोई गुण है और अपने अतिशय संकोची स्वभावके कारण न मैंने पूज्य बाबूजीसे कभी अधिक बात ही की, पर फिर भी पता नहीं क्यों, मुझे उन्होंने सतत प्यार-ही-प्यार दिया। पद-पदपर पूछ-पूछकर मेरी सँभाल करते। बड़े-बड़े लोगोंको अनदेखा करके जब वे मेरा नाम लेकर साधारण-सी व्यावहारिक बात सबके सामने पूछते तो एक ओर तो मैं उनके प्यारसे सराबोर हो जाती दूसरी और ओर लाजसे गड़-भी जाती।

पढ़ाई पूरी करनेके बाद ही श्रीबोथराजी (मेरे जीवन सर्वस्व) गोरखपुर पूज्य बाबूजीके पास चले आये। कमाईकी कोई चेष्टा न करनेसे उनका हाथ सदा ही तंग रहा, अतः अपने किसी मित्रसे परामर्श करके उन्होंने मेरा कुछ गहना बेचकर दो हजार रुपया इकट्ठा किया और उसे व्याजपर अपने उन्हीं मित्रके पास रख दिया। उन दिनों दो हजारकी रकम भी अधिक होती थी। किसी प्रकार पूज्य बाबूजीको इस बातकी खबर लग गयी। उन्होंने श्रीबोथराजीको और मुझे वहीं मथुरा धर्मशालामें, जहाँ वे ठहरे थे, बुलाया और पुनः सारी बातकी जानकारी प्राप्त की। सारी बात सुनकर उन्होंने श्रीबोथराजीसे कहा— देखो, अब वह रुपया मेरा है और मैं रखूँगा।

श्रीबोथराजी और मैं, दोनों ही पूज्य बाबूजीकी इतनी आत्मीयताभरी वाणी सुनकर आप्यायित हो गये। हम दोनों ही सोचने लगे— अहो! इतने बड़े सिद्ध संतके श्रीमुखसे अत्यधिक अपनेपनकी इतनी प्यार भरी वाणी बड़े भाग्यसे निकलती है और सुननेको मिलती है।

मन-ही-मन हमलोग अपने भाग्यकी सराहना करते हुए अपने मथुरा-स्थित निवासपर आ गये।

मथुरामें पूज्य बाबूजीने मेरी भोजनादिकी सँभालका दायित्व श्रीभगवानदासजी सिंहानियाको विशेष रूपसे दिया था। भगवानदासजी जैसे देवपुरुषके संरक्षणमें मुझे तो क्या, किसीको भी किसी प्रकारकी भोजनादिकी असुविधा नहीं हुई। इस प्रकारके सभी समारोहोंमें श्रीभगवानदासजी ही सबके खानपानकी सारी व्यवस्था देखते थे। उनके मृदुल स्वभावसे सब सदा प्रसन्न रहते। बड़े मनुहारसे वे सबको भोजन कराते, सुख-सुविधाका ध्यान रखते। उनके मनुहारमें पूज्य बाबूजीके प्यारकी झलक मिलती थी, अनुभूति होती थी। ■

आ. श्रीअगमदुलारीजी श्रीवास्तव

ममतामूर्ति मेरे बाबूजी

परम पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का मेरे ऊपर अपार वात्सल्य था। वे मुझे सदा 'अगमा बेटी' ही कहते। जब-जब मैं अपने पीहर लखनऊसे गोरखपुर आती, वे बाई (सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला) को मेरे पास भेजते। अनगिनत यादें बाबूजीकी मनमें भरी पड़ी हैं, कहाँ तक लिखूँ?

सन् १९५६ के अन्तमें बाबूजी सपरिवार रतनगढ़ चले गये थे। राजस्थानमें रतनगढ़ ही बाबूजीकी पूर्वज-भूमि है। सन् १९५७ में श्रीराधाष्टमीका महोत्सव रतनगढ़में ही मनाया गया था। महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये बाबूजीने मुझे गोरखपुरसे रतनगढ़ बुला लिया। मेरे साथ मेरी दो लड़कियाँ इन्दू और कृष्णा भी गयी थीं। लगभग एक मास मैं वहाँ रही। उस समय जिस असीम स्नेहसे बाबूजीने मुझे आप्यायित-आप्लावित कर दिया, उसका वर्णन सम्भव है ही नहीं। सदा मेरे सोने-रहने-खाने-पीनेका बहुत ध्यान रखते और मेरी छोटी लड़कियोंका बड़ा लाड-दुलार करते। उनके प्यारसे मेरा रोम-रोम संसिक्त था।

उत्सवके बाद मुझे वहाँसे वापस गोरखपुर आना था। जब वहाँसे चलनेका दिन आया तो मेरे मनमें यह इच्छा जाग उठी कि उत्सवकी झाँकीमें जिन साड़ियोंका उपयोग किया गया था, उसमेंसे एक साड़ी प्रसादीके रूपमें यदि मुझे मिल जाती तो कितना अच्छा होता। मेरे मनमें प्रसादी साड़ीकी इच्छा चाहे जितनी बलवती हो, पर मैं संकोचके मारे कुछ कह नहीं पा रही थी। स्टेशनपर जानेके लिये हमारा समान बँध गया। रास्तेमें भोजनके लिये पूड़ी-साग बनकर तैयार हो गया। मैं मन-ही-मन प्रसादी साड़ीके लिये अधीर हुई जा रही थी, पर संकोचके भारसे दबी भी जा रही थी। अब चलना है, अतः पूजाघरमें जाकर मैंने श्रीठाकुरजीको प्रणाम किया। इसके बाद पूज्य बाबाको मैं प्रणाम कर आयी। माँजी (सौ. श्रीसावित्री बाई फोगलाकी माताजी) मेरी विदाईके समय टीका करनेके लिये थालीमें रोली-अक्षत निकालने लगी। मुझे यह भी आभास हो गया कि विदाईमें माँ मुझको साड़ी भी देगी, पर मेरे प्राण तो उत्सवकी झाँकी वाली साड़ीयोंमें अटके थे। मनमें प्रसादी साड़ीका चिन्तन गहराईसे हो रहा था, पर मैं नहीं समझ पा रही थी कि क्या करूँ और उसमेंसे कोई साड़ी कैसे माँगू। उसी समय बाबूजी घरके भीतर आये और जल्दी

मचाते हुए बोले– अरे, तुम क्या कर रही हो ? देर करनेसे ट्रेन छूट जायेगी।

माँजी रोली-अक्षत वाली थाली लेकर टीका करनेके लिये आगे आयीं। उनके पीछे-पीछे बाई भी थी। प्रसादी साड़ीके लिये मन तो विह्वल हो ही रहा था, अब बाबूजीसे बिछुड़कर जानेकी भावनाने मनको और अधिक कातर बना दिया। मैं कातर होकर बाबूजीकी ओर देखने लगी। मेरी वाणी अवरुद्ध हो गयी। तभी अचानक माँजीसे बाबूजी बोले– अरे ! राधाष्टमीमें उतनी साड़ियाँ लगायी गयी थीं झाँकी सजानेके लिये, उन्हींमेंसे एक साड़ी लाकर इसे दो न !

मैं नहीं जानती, मैं न तब भी जान सकी थी और न अबतक जान पायी हूँ कि बाबूजीकी मेरे मनकी बात कैसे ज्ञात हो गयी। बाबूजीके इन प्यार भरे शब्दोंको सुनकर मेरी भावनाओंमें उफान आ गया। भावोंको संयमित कर सकना कठिन हो गया। बाबूजीके स्नेह-सने निर्देशके बाद ज्यों ही बाई उनमेंसे एक साड़ी ले आयी और ज्यों ही उस साड़ीको मेरे आँचलमें माँजीने डाला, मैं बेकाबू हो उठी और मेरे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। अपनी संतानके मनकी बातोंको जान लेनेवाले ममतापूर्ति मेरे बाबूजी मुझसे बोले– अरी पगली ! रोती क्यों है ? प्रसन्नता पूर्वक जाना चाहिये।

आँसू पोछते-पोछते मैं माँजीको, बाबूजीको, सबको प्रणाम करके अपनी लड़कियोंके साथ स्टेशन चली आयी।

उनके ममत्वका एक प्रसंग तो कभी भूलता ही नहीं। पहले गीतावाटिकामें बाबूजीका सत्संग प्रातःकाल रोज एक घंटा हुआ करता था और होता था कोठीके बाहरी बरामदेमें। उस समय गीतावाटिकामें केवल एक ही विशाल कोठी थी, जिसमें बाबूजी रहा करते थे। आजकल गीतावाटिकामें प्रवेश करनेके लिये अति विशाल दो मुख्य द्वार हैं, पर पहले एक छोटा-सा प्रवेश द्वारा था, जो ठीक बीचमें था। उस छोटे प्रवेश-द्वारके फाटकमें घुसते ही सामने वाली कोठी दिखलायी देती थी और कोठीके व्यक्तिको प्रवेश करता हुआ व्यक्ति दिखलायी दे जाता था। उस कोठीके बाहरी बरामदेमें बाबूजी फाटककी ओर मुँह करके बैठते थे और अपना प्रवचन दिया करते थे। सत्संगी भाई लोग प्रवचन सुननेके लिये समयसे आकर अपने-अपने स्थानपर बैठ जाया करते थे। आगे चलकर प्रवचनका कार्यक्रम श्रीराधाष्टमी-पंडालमें होने लग गया, पर मैं उस समयकी बात कह रही हूँ, जब प्रवचन बरामदेमें हुआ करता था। गीतावाटिकाके बगलमें ही एक किरायेके मकानमें मैं सपरिवार रहा करती थी और प्रवचन सुननेके लिये जाया करती थी। घरमें चाहे जितना काम हो, उन सबको छोड़कर मैं प्रतिदिन जाती थी और बाबूजीके भी ध्यानमें यह बात भली प्रकारसे थी कि मेरी 'अगमा बेटी' सत्संगमें बिना नागा आया करती है।

सन् १९४८ या ४९ के आस-पासकी बात होगी। श्रीगोस्वामी चाचाजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) के घरके आँगनमें रोज रात्रिके समय रासलीला हुआ करती थी। सभी लोग रासलीला देखनेके लिये जाया करते थे। उन दिनों मेरे पाँवके तलवेमें एक फोड़ा निकल आया। फोड़ेका कष्ट सहकर भी मैं प्रतिदिन सत्संगमें जाती रही, पर बादमें पीड़ा बहुत बढ़ गयी। पीड़ा इतनी अधिक बढ़ गयी कि धरतीपर पाँव रखनेमें टीस होती थी। एक दिन फोड़ने इतना विकट रूप ले लिया कि किसी तरह मैं शौचालय और स्नानघरतक जा पायी। मेरी बेटी कृष्णाने मेरे बैठनेके लिये चटाई बिछायी और चटाई पर बैठी-बैठी मैं सोचने लगी कि